कृषक भारती



खरीफ विशेषांक–2026



कृषि सूचना ब्युरो, प्रसार निदेशालय
चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर

कृषक भारती

कृषि मूलस्य जीवनम्
(खरीफ विशेषांक अंक 2026)

संरक्षक
डॉ. संजीव गुप्ता
कुलपति

प्रधान सम्पादक
प्रो. (डॉ.) विवेक कुमार त्रिपाठी
निदेशक प्रसार एवं
अधिष्ठाता, उद्यान संकाय

सम्पादक मण्डल
डॉ. कौशल कुमार, अधिष्ठाता, कृषि एवं वानिकी संकाय
डॉ. वी. के., कनौजिया, नोडल अधिकारी, आर.के.वी.वाई.
डॉ. सीमा सोनकर, अधिष्ठाता, गृह विज्ञान महाविद्यालय
डॉ. राम जी, विभागाध्यक्ष, पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान विभाग
डॉ. सर्वेश कुमार, विभागाध्यक्ष, मृदा विज्ञान विभाग
डॉ. उमा नाथ शुक्ला, प्राध्यापक, सस्य विज्ञान विभाग
डॉ. पी. के. भदौरिया, सह प्राध्यापक, इंजी. कालेज, इटावा
डॉ. भूपेन्द्र कुमार सिंह, प्रभारी, के.वी.के., फर्रुखाबाद
डॉ. विनोद प्रकाश, प्रभारी, के.वी.के., फिरोजाबाद
डॉ. अर्चना सिंह, सह प्राध्यापक, गृह विज्ञान महाविद्यालय

ग्राफिक्स
श्री दीपक कुमार पाण्डेय

छायांकन
श्री विनोद कुमार यादव
श्री राजेश कुमार द्विवेदी
श्री संजय कुमार

एक प्रति का मूल्य : रु. 50/–
(डाक व्यय अतिरिक्त)

इस अंक में

क्र.सं.	विषय सूची एवं लेखक	पृष्ठ संख्या
1.	संकर धान उत्पादन तकनीक डॉ. विजय कुमार यादव	1
2.	लंबी अवधि वाली अरहर की वर्षा आधारित अंतरवर्तीय खेती डॉ. अखिलेश मिश्रा	4
3.	उत्तर प्रदेश में खरीफ ऋतु में उगाई जाने वाली तिलहनी फसलें डॉ. महक सिह	7
4.	गुणवत्ता से भरपूर पपीते की वैज्ञानिक खेती रिद्धिमा त्रिपाठी, प्रो. विवेक कुमार त्रिपाठी, उपेन्द्र यादव एवं डॉ. सोमेन्द्र वर्मा	9
5.	औषधीय फल आँवलाः वैज्ञानिक खेती एवं मूल्य संवर्धन उपेन्द्र यादव, प्रो. विवेक कुमार त्रिपाठी, रिद्धिमा त्रिपाठी, स्वरूप मणि एवं डॉ. सौरभ तिवारी	13
6.	परम्परागत उद्यानिकी फसलेंः बदलते मौसम में टिकाऊ कृषि की आधारशिला जतिन कटियार, डॉ. राजीव एवं प्रो. विवेक कुमार त्रिपाठी	16
7.	जिमीकंद की खेती डॉ. पृथ्वी पाल, डॉ. विनोद प्रकाश, डॉ. नौशाद आलम एवं डॉ. ओमकार सिंह यादव	18
8.	जलवायु परिवर्तन और खरीफ सब्जियाँ : उत्तर प्रदेश के किसानों के सामने चुनौतियाँ और समाधान श्रुति झा, डॉ. राजीव, डॉ. डी.पी. सिंह एवं डॉ. केशव आर्या	21
9.	उड़द उत्पादन की ग्रामीण कृषक महिलाओं की आजीविका सुदृढ़ीकरण में भूमिका डॉ. दिव्या कौशिक, डॉ. भूपेंद्र कुमार सिंह एवं डॉ. आयुषी मिश्रा	23
10.	खरीफ कृषि में महिला एग्रीप्रेन्योरशिपः बदलते गाँवों की नई पहचान डॉ. ऐश्वर्या सिंह, डॉ. जया वर्मा एवं डॉ. विनीता सिंह	26
11.	स्मार्ट एग्रो टेक्सटाइल्स द्वारा खरीफ फसलों की सुरक्षाः एक नवीन एवं सतत दृष्टिकोण रश्मि दूबे, डॉ. अर्चना सिंह एवं डॉ. एकता शर्मा	28
12.	फसल सुरक्षा हेतु कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए.आई.) की भूमिका डॉ. उत्कर्ष उपाध्याय, सुमित कुमार शुक्ल, डॉ. शिवानन्द पाण्डेय, डॉ. जीतेन्द्र ओझा, डॉ. अभिषेक तिवारी, डॉ. हिमांशु त्रिवेदी एवं डॉ. दीपांजलि बाग	32
13.	जैविक खेती के प्रमुख अवयव और प्रयोग विधि डॉ. नौशाद आलम, डॉ. पृथ्वी पाल, डॉ. विनोद प्रकाश एवं डॉ. ओमकार सिंह यादव	34
14.	फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (पी.एस.बी.) कल्चर एकः लाभ अनेक डॉ. विनोद प्रकाश, प्रो. विवेक कुमार त्रिपाठी एवं डॉ. भूपेन्द्र कुमार सिंह	37
15.	बलरामपुर जिले के वनवासी (जनजाति) किसानों का उद्यमिता पूर्ण व्यवहारः एक व्यापक विश्लेषण सुमित कुमार शुक्ल, डॉ. रोहित, डॉ. हरिश्चंद्र सिंह, डॉ. जितेंद्र ओझा, विकास मौर्य एवं डॉ. हिमांशु त्रिवेदी	40
16.	एल–नीनो की चुनौती और उत्तर प्रदेश की कृषिः किसानों के लिए प्रबंधन एवं समाधान डॉ. सौरभ राज पांडे, डॉ. राघवेंद्र सिंह, डॉ. अजय कुमार सिंह, डॉ. प्रीति यादव एवं डॉ. सीमा यादव	43

चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

किसान काल सेन्टर : 18001801551 (निःशुल्क)

कुलपति की कलम से.....



भारतीय कृषि हमारी सभ्यता, संस्कृति एवं अर्थव्यवस्था की आधारशिला है। यह केवल खाद्यान्न उत्पादन का माध्यम नहीं, बल्कि देश की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा, ग्रामीण रोजगार, पर्यावरणीय संतुलन तथा समग्र सामाजिक–आर्थिक विकास का प्रमुख आधार है। आज भी देश की लगभग आधी कार्यशील जनसंख्या प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि एवं उससे संबद्ध क्षेत्रों पर निर्भर है। सीमित संसाधनों, जलवायु परिवर्तन, भूमि जोतों के निरंतर छोटे होने तथा प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते दबाव जैसी चुनौतियों के बावजूद भारतीय किसानों ने अपने अथक परिश्रम, नवाचार तथा वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाकर कृषि क्षेत्र को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया है।

हरित क्रांति से लेकर डिजिटल कृषि, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, ड्रोन तकनीक, सटीक कृषि, इंटरनेट ऑफ थिंग्स, रिमोट सेंसिंग तथा मौसम आधारित कृषि परामर्श तक भारतीय कृषि ने निरंतर विकास की नई दिशा प्राप्त की है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड, सूक्ष्म सिंचाई, फर्टीगेशन, गुणवत्ता युक्त बीज, जलवायु–सहिष्णु उन्नत किस्में, जैव उर्वरकों एवं कृषि यंत्रीकरण ने कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में महत्वपूर्ण वृद्धि की है। अब आवश्यकता केवल अधिक उत्पादन की नहीं, बल्कि कम लागत, अधिक लाभ, संसाधन संरक्षण एवं टिकाऊ कृषि विकास सुनिश्चित करने की है।

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन कृषि के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती के रूप में उभर रहा है। अनियमित वर्षा, अत्यधिक तापमान, सूखा, बाढ़, ओलावृष्टि तथा कीट एवं रोगों की बदलती प्रकृति किसानों के लिए नई चुनौतियाँ प्रस्तुत कर रही हैं। इन परिस्थितियों में जलवायु–स्मार्ट कृषि, फसल विविधीकरण, एकीकृत कृषि प्रणाली, संरक्षण कृषि, वर्षा जल संचयन तथा प्राकृतिक संसाधनों का वैज्ञानिक प्रबंधन भविष्य की कृषि का आधार बनेंगे। साथ ही कम अवधि एवं जलवायु–सहिष्णु किस्मों का विकास तथा उनका व्यापक प्रसार समय की महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

उत्तर प्रदेश देश की कृषि अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार है। प्रदेश की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को सुदृढ़ बनाने के लिए दलहन, तिलहन, मक्का, श्री अन्न (मोटे अनाज), बीज उत्पादन, अंतःफसली प्रणाली तथा प्रसंस्करण आधारित कृषि को विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है। किसानों की आय में स्थायी वृद्धि के लिए कृषि को पशुपालन, दुग्ध उत्पादन, मत्स्य पालन, बकरी पालन, मुर्गी पालन, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, बागवानी एवं कृषि उद्यमिता जैसे विविध आयामों से जोड़ना आवश्यक है। मूल्य संवर्धन, प्रसंस्करण, किसान उत्पादक संगठन, कृषि स्टार्टअप एवं डिजिटल विपणन भविष्य की लाभकारी कृषि के प्रमुख आधार बनेंगे।

किसानों में कृषि की नई वैज्ञानिक तकनीकों के बारे में उचित जानकारी आवश्यक है। किसानों को समृद्ध बनाने हेतु आधुनिक कृषि तरीकों जैसे–सूक्ष्म सिंचाई विधियों से फर्टीगेशन, मृदा परीक्षण, सीडड्रिल, आधुनिक कृषि यंत्रों का इस्तेमाल एवं नवीनतम प्रजाति के उच्चगुणवत्तायुक्त फसलों के बीजों को अपनी कृषि क्रियाओं में शामिल करना नितान्त आवश्यक है। खेती के साथ–साथ किसानों को पशुपालन, मुर्गी पालन, बकरी पालन, सूकर पालन, मत्स्य पालन, मशरुम उत्पादन, मौन पालन जैसे कई उद्यमों को अपनी कृषि के साथ लेकर विकास करना पड़ेगा जिससे किसानों की आय में वृद्धि हो सके।

इस दिशा में चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर निरंतर अनुसंधान, शिक्षा एवं प्रसार के माध्यम से किसानों तक नवीनतम वैज्ञानिक तकनीकों का प्रभावी हस्तांतरण सुनिश्चित कर रहा है। विश्वविद्यालय द्वारा विकसित उन्नत फसल प्रजातियाँ, आधुनिक कृषि यंत्र, जल एवं मृदा संरक्षण तकनीकें, एकीकृत पोषक तत्व एवं कीट प्रबंधन, प्राकृतिक एवं जैविक खेती, जलवायु–स्मार्ट कृषि तकनीकें तथा कृषि उद्यमिता से संबंधित नवाचार किसानों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। विश्वविद्यालय के कृषि विज्ञान केंद्र, प्रसार निदेशालय एवं वैज्ञानिक निरंतर प्रशिक्षण, प्रदर्शन, कृषक गोष्ठियों, तकनीकी प्रकाशनों तथा डिजिटल माध्यमों से कृषि ज्ञान को प्रयोगशाला से खेत तक पहुँचाने हेतु प्रतिबद्ध हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि **कृषक भारती खरीफ विशेषांक 2026** में प्रकाशित वैज्ञानिक लेख, उन्नत फसल उत्पादन तकनीकें, नवीनतम किस्मों की जानकारी, कृषि यंत्रीकरण, प्राकृतिक संसाधन संरक्षण, कृषि उद्यमिता तथा कृषि–संबद्ध व्यवसायों से संबंधित व्यवहारिक सामग्री कृषकों, कृषक महिलाओं, कृषि उद्यमियों, प्रसार कार्यकर्ताओं, विद्यार्थियों एवं शोधकर्ताओं के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी। यह विशेषांक वैज्ञानिक अनुसंधान एवं व्यवहारिक कृषि के मध्य एक सशक्त सेतु का कार्य करते हुए आत्मनिर्भर, लाभकारी एवं टिकाऊ कृषि व्यवस्था के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देगा।

(संजीव गुप्ता)
कुलपति

सम्पादकीय



भारत सदैव कृषि प्रधान देश रहा है और आज भी देश की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा का आधार हमारे किसान ही हैं। बदलते समय के साथ कृषि क्षेत्र अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है, जिस कारण यह आवश्यक हो गया है कि भूमि में जीवांशयुक्त पदार्थ वर्मी कम्पोस्ट, नाडेप कम्पोस्ट, जैव उर्वरक एवं हरी खाद का प्रयोग किया जाये। जिससे लागत कम तथा पैदावार अधिक होती है तथा उच्च गुणवत्ता का उत्पाद प्राप्त होता है, साथ भूमि से प्राप्त उत्पाद स्वादिष्ट एवं पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं।

भारतीय कृषि आज परिवर्तन और नवाचार के एक महत्वपूर्ण दौर से गुजर रही है। बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन, सीमित प्राकृतिक संसाधनों तथा बदलती बाजार आवश्यकताओं के बीच कृषि क्षेत्र को अधिक उत्पादक, लाभकारी एवं टिकाऊ बनाने की आवश्यकता है। ऐसे समय में वैज्ञानिक खेती, आधुनिक तकनीकों का उपयोग तथा किसानों तक नवीन ज्ञान का प्रभावी प्रसार अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। देश में दलहन, तिलहन, बागवानी तथा दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई है। भारत विश्व में दूध उत्पादन में प्रथम तथा फल एवं सब्जी उत्पादन में अग्रणी देशों में शामिल है।

पिछले दो दशकों में देश में तीव्र शहरीकरण, औद्योगिकीकरण तथा अवसंरचनात्मक विकास के कारण कृषि भूमि का एक भाग आवासीय कॉलोनियों, सड़कों, औद्योगिक इकाइयों, रेलवे तथा अन्य परियोजनाओं के लिए उपयोग में लाया गया है। संतोष का विषय यह है कि सीमित भूमि संसाधनों के बावजूद भारतीय किसानों ने आधुनिक तकनीकों, उन्नत किस्मों, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, सूक्ष्म सिंचाई तथा यंत्रीकरण को अपनाकर खाद्यान्न उत्पादन में निरंतर वृद्धि सुनिश्चित की है। देश के कृषि वैज्ञानिक, कृषि विश्वविद्यालय तथा कृषि विज्ञान केंद्र, किसानों तक नवीन तकनीकों को पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

आने वाले वर्षों में जलवायु परिवर्तन, भूमि संसाधनों में कमी तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण को ध्यान में रखते हुए हमें जल संरक्षण, जैविक एवं प्राकृतिक खेती, फसल विविधीकरण तथा आधुनिक कृषि तकनीकियों को बढ़ावा देना होगा। यही प्रयास कृषि को लाभकारी, टिकाऊ और भविष्य उन्मुख बनाएंगे।

दूसरी तरफ देश का किसान आज भी खेती की परम्परागत विधियों अपनाये हुए हैं, जिसके कारण कृषकों के लिए खेती आर्थिक दृष्टि से घाटे का सौदा बनती जा रही है जबकि देश में विकसित नवीनतम कृषि तकनीकियों को अपनाने से कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में बढ़ोत्तरी बिना किसी अतिरिक्त व्यय के संभव हो सकती है। वैज्ञानिकों के समक्ष चुनौती केवल इस बात की है कि कृषि सम्बन्धी नवीनतम तकनीकों को परीक्षण, प्रदर्शन, प्रशिक्षण, प्रक्षेत्र दिवस, कृषक गोष्ठी, किसान मेला आदि प्रचार–प्रसार के माध्यमों से कृषकों तक पहुँचायें और किसानों की आय को दोगुना करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत करें। इस दिशा में प्रसार निदेशालय लागातार कृषि विज्ञान केंद्रों के माध्यम से प्रयत्नशील है तथा कृषि तकनिकियों को जन जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से कृषि उपयोगी लेख का ऋतुओं के अनुसार वर्ष में तीन बार प्रकाशन करता है।

कृषक भारती का उद्देश्य किसानों तक वैज्ञानिक जानकारी, नवीन तकनीक और सफल अनुभवों को पहुँचाना है, जिससे कृषि क्षेत्र और अधिक सशक्त तथा समृद्ध बन सके। किसानों की समृद्धि ही राष्ट्र की समृद्धि का आधार है।

मुझे विश्वास है कि **कृषक भारती खरीफ विशेषांक 2026** में कृषि वैज्ञानिकों द्वारा सरल हिन्दी भाषा में प्रस्तुत अनुकरणीय एवं व्यवहारिक तकनीकी आधारित लेख प्रसार कार्यकर्ताओं, कृषकों, कृषक महिलाओं, पशुपालकों, कृषि छात्रों एवं कृषि उद्यमियों के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होंगें।

(विवेक कुमार त्रिपाठी)
निदेशक प्रसार

संकर धान उत्पादन तकनीक

डॉ. विजय कुमार यादव

प्राध्यापक एवं प्रभारी अधिकारी धान परियोजना

चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

देश ने इस वर्ष 150 मिलियन टन से अधिक चावल उत्पादन कर एक नया कीर्तिमान बनाया है। इसमें किसानों का अथक परिश्रम, कृषि अनुसंधानों एवं कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा विकसित उन्नत प्रजातियों, संकर धान उत्पादन तकनीक ज्ञान, को कुछ हद तक अपनाना और इसके साथ ही चावल उत्पादन के लिए अनुकूल मौसम का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

इस समय उत्तर प्रदेश धान उत्पादन में देश मे प्रथम स्थान पर है जिसका देश के कुल उत्पादन में 13 प्रतिशत का योगदान है। संकर धान उत्पादन में प्रदेश 3.5 मिलियन हेक्टेयर के साथ देश का 38.40 प्रतिशत संकर धान का उत्पादन कर रहा है। क्षेत्र को लगभग 19 लाख हेक्टेअर भूमि पर इसकी खेती की जा रही है। लगभग 14.2 लाख हेक्टेअर क्षेत्रफल के साथ उत्तर प्रदेश देश में प्रथम स्थान पर है। यहाँ हाइब्रिड धान उत्पादन में बढ़ोत्तरी की बहुत सम्भावनाएं हैं।

यह सर्वविदित है कि खाद्य सुरक्षा की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी चावल की उत्पादकता, गुणवत्ता एवं लाभांश बढ़ाना अति आवश्यक हो गया है। यह वृद्धि हमें घटते हुए आधारीय उत्पादन संसाधनों जैसे– भूमि, मृदा स्वास्थ्य, श्रमिक, पानी एवं मौसम के उतार–चढ़ाव में करनी है, निःसंदेह लक्ष्य कठिन है परन्तु इसको हम संकर एवं सुगन्धित धान की सही उत्पादन तकनीकी अपनाकर हासिल कर सकते हैं। संकर धान से प्रजनित सामान्य किस्मों की तुलना में लगभग 10.15 कु. प्रति हे. अधिक उपज यानि 10000 से 15000 रु. की शुद्ध अधिक आय मिलती है क्योंकि इसमें प्रति पौधा बालियां एवं प्रति बाली दानों की संख्या अधिक होती है। दूसरे इसमें प्रारम्भिक वानस्पतिक अवस्था पर सूखा सहनशीलता भी पायी जाती है। ग्रामीण जनता के रोजगार सृजन में भी सहायक है। यदि आप संकर बीज उत्पादन करते हैं तो लगभग 35 हजार से 55 हजार रु. प्रति हे. का शुद्ध लाभ प्राप्त होगा।

उत्तर प्रदेश में हाइब्रिड धान से अधिकतम उत्पादन के लिए आवश्यक उत्पादन तकनीक/विधियाँ संक्षेप में निम्नवत् दी जा रही हैं। जिन्हें अपनाकर कृषक अधिक उत्पादन के साथ ही अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं।

हाइब्रिड (संकर) धान का चुनावः

हाइब्रिड धान मौसम के प्रति अधिक संवेदनशील होता है। अतः क्षेत्र विशेष के लिए कौन सी हाइब्रिड अनुकूल होगी इसकी जानकारी अति आवश्यक है। आज उत्तर प्रदेश के बाजार में दर्जनों बीज कम्पनी संकर धान बेच रही है। इसमें कुछ कम्पनी को छोड़कर अन्य पर विश्वास नहीं किया जा सकता है।

उत्तर प्रदेश के लिए संस्तुत हाइब्रिड धान को निम्न तालिका में प्रदर्शित किया जा रहा है, जिसमें से अपनी परिस्थिति के अनुसार इनका चयन कर सकते हैं।

भूमि का चयन एवं भूमि शोधनः

समुचित सस्य प्रबंधन संकर धान की पूर्ण उत्पादन क्षमता उपयोग के लिए अत्यन्त आवश्यक है। संकर धान की अच्छी फसल लेने हेतु दोमट या मटियार भूमि उपयुक्त होती है। इनमें पानी रोकने की क्षमता अधिक होती है। फसल को भूमि जनित रोगों से बचाने के लिए *ट्राइकोडर्मा हार्जिएनम* 2 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. की 2.5 किग्रा मात्रा प्रति हेक्टेयर 60–75 किग्रा गोबर की खाद में मिलाकर हल्के पानी का छींटा देकर 8–10 दिन तक छाया में रखने के उपरांत आखिरी जुताई के समय खेतों में मिला दें।

बीज दरः 15–20 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है, जो सामान्य प्रजातियों की बीज दर का लगभग आधा है।

नर्सरी प्रबंधः

पूर्णतः समतल भूमि पर एक मीटर चौड़ाई की आवश्यकतानुसार लम्बी रेज्ड वेड बनाते हैं। 100 वर्ग मी. नर्सरी क्षेत्र में 250 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 1 किग्रा. नत्रजन, 0.5 कि.ग्रा. फासफोरस एवं 0.50 कि.ग्रा. पोटाश डालते हैं। बीजों को 12–15 घण्टे भिगोने के बाद एक–दो दिन बोरों से ढ़क देते हैं जिससे अच्छा अंकुरण हो जाये। बीमारियों से बचाव हेतु प्री सोक्ड बीजों

उत्तर प्रदेश के लिए संस्तुत हाइब्रिड (संकर) धान

क्र.सं.	हाइब्रिड	पकने की अवधि	औसत उत्पादन कु./हे.	अनुकूल पारिस्थितिकीय एवं प्रदेश हेतु संस्तुत
शीघ्र पकने वाली :–				
1.	पूसा राइस हाइब्रिड–10	110–115	55	सिंचित, बासमती गुणवत्ता, उत्तर प्रदेश
2.	पन्त संकर धान–3	115–120	60	सिंचित, वर्षा आधारित एवं हल्की ऊसर भूमि हेतु
3.	डी.आर.आर.एच.–2	111–120	55	सिंचित, ऊसर भूमि हेतु
4.	सहयाद्री–4	115–120	57	सिंचित, उत्तर प्रदेश
5.	पी.ए.–6201	115–120	73	सिंचित, उत्तर प्रदेश
मध्यम अवधि :–				
6.	के.आर.एच.–2	130–135	74	सिंचित, ऊसर सहिष्णु
7.	पी.एच.बी.–71	130–135	78.6	सिंचित, उत्तर प्रदेश
8.	प्रो.एग्रो.–6444	135–140	61.8	सिंचित, उत्तर प्रदेश
9.	जे.के.आर.एच.–401	135–140	6.3	सिंचित, उत्तर प्रदेश
10.	एच.आर.आई.–157	135–140	6.51	सिंचित, उत्तर प्रदेश
11.	डी.आर.आर.एच.–3	135–140	6.07	सिंचित, उत्तर प्रदेश
12.	एम.आर.आई. 157 (2009)	130–135	6.51	सिंचित, उत्तर प्रदेश
13.	डी.आर.आर.एच.–3	125–130	6.07	सिंचित, उत्तर प्रदेश
14.	यू.एस.–312	125–130	6.07	सिंचित, उत्तर प्रदेश
15.	वी.एस.आर.–202	130–135	6.50	सिंचित, उत्तर प्रदेश
16.	आर.एच.–1531	125–130	6.50	सिंचित, उत्तर प्रदेश
17.	एराइज प्राइमा	126–130	6.5	सिंचित, उत्तर प्रदेश
18.	यू.एस.–312 (2010)	125–130	5.75	सिंचित, उत्तर प्रदेश
19.	एराइज 6644 गोल्ड (2015)	130–135	6.7	सिंचित, उत्तर प्रदेश
20.	27पी.31 (2012)	125–130	8.9	सिंचित, उत्तर प्रदेश
21.	27पी.63 (2013)	132–135	6–6.7	सिंचित, उत्तर प्रदेश
22.	इन्दम 200 017	125–130	7.5	सिंचित, उत्तर प्रदेश
23.	जे.के.आर.एच. 401	135–140	7.5	सिंचित, उत्तर प्रदेश
24.	जे.के.आर.एच. 174	132–138	6.5–7.5	सिंचित, उत्तर प्रदेश

को कार्बेन्डाजिम (50 प्रतिशत डब्ल्यू. पी.) 4 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से शोधित करें। 20–25 ग्राम प्रति वर्ग मी. बीज का ही उपयोग करें। 20–25 दिन की पौध को मिट्टी सहित कम से कम जड़ों की हानि के साथ एक पौधा प्रति हिल उथली 10–15 से.मी. पर रोपाई करें।

पोषक तत्व प्रबन्धः

संकर धान हेतु 150 कि.ग्रा. नत्रजन, 60 कि.ग्रा. फास्फोरस, 60 कि.ग्रा. पोटाश एवं 50 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट (तीन साल में केवल एक–बार) या 20–25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष खेत की तैयारी के समय प्रयोग करें। फास्फोरस की पूर्ण मात्रा, पोटाश की 3/4 एवं नत्रजन की 1/2 मात्रा रोपाई के समय तथा शेष 1/4 भाग पोटाश एवं शेष 1/4 भाग नत्रजन अधिकतम किल्ले बनते समय एवं शेष 1/4 भाग नत्रजन बाली बनने की प्रारम्भिक अवस्था पर प्रयोग करें।

सिंचाईः

ध्यान रहे कि भूमि में नमी बराबर बनी रहे तथा दाना भरने की अवस्था में 5 सेमी तक जल स्तर खेत में बनाए रखना लाभदायक होता है। भूमि में महीन दरारें पड़ने पर सिंचाई करने से जल बचत संभव है।

खरपतवार नियंत्रणः रोपाई के तीन दिन के अंदर ब्यूटाक्लोर 2.5 लीटर/हेक्टेयर या एनीलोफास 1.5 लीटर/हेक्टेयर की दर से 500–600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव कर दें अथवा दो निकाई रोपाई की 20–40 दिनों बाद करने से खरपतवार आसानी से नियन्त्रित किया जा सकता है।

फसल सुरक्षाः

संकर धान में दीमक, जड़ की सूडी, तनाछेदक, पत्तीलपेटक, टिड्डे, हिस्पा इत्यादि अनेक कीटों का प्रकोप होता है। रासायनिक उपचार क्षतिस्तर मूल्यांकन के पश्चात करना चाहिए। इनके उपचार के लिए कार्बोफ्यूरान या कार्टेप के सक्रिय तत्व की 750 ग्राम मात्रा या फोरेट के सक्रीय तत्व की 12.50 किग्रा. मात्रा दानेदार उत्पाद का प्रति हेक्टेअर छिड़काव कर नियंत्रित किया जा सकता है।

हाइब्रिड धान की फसल में शीथ ब्लाइट, जीवाणु पत्ती झुलसा, झोका, नेकब्लास्ट, लीफ स्ट्रिप, स्टेम रोठ जैसे अनेक रोगों का प्रकोप होता है। अधिक गुणवत्ता की उपज प्राप्त करने हेतु बीमारियों का प्रबंधन अति आवश्यक है। अतः यथासम्भव एकीकृत नाशी जीव प्रबंध अपनाना चाहिए।

फसल की कटाई–मड़ाईः

फसल की कटाई हाथ से ही करें क्योंकि कम्बाईन मशीन से कटाई में लम्बे दाने वाली किस्मों में पूर्ण सफलता नहीं मिली है, इसमें चावल टूटने लगता है। कटाई के उपरान्त फसल को 2–3 दिन तक सूखने दें इसके बाद उसकी मड़ाई करें। कटाई के समय अनाज में नमी की मात्रा 15–20 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए तथा भण्डारण के समय नमी 12–13 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

शुद्ध आयः

क्षेत्र विशेष के लिये उपयुक्त धान हाइब्रिड के अच्छे प्रबन्धन एवं देख–भाल के द्वारा भरपूर उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। आज हाइब्रिड की उत्पादकता कुन्तल में न मापकर टन में मापी जा रही है। सामान्यतः 6.0 टन से लेकर 12 टन/है. तक इसका उत्पादन लिया जा सकता है। प्रजातियों के सापेक्ष सामान्यतः 10,000–15,000 हजार रू. की शुद्ध अधिक आय प्राप्त की जा सकती है।

लंबी अवधि वाली अरहर की वर्षा आधारित अंतरवर्तीय खेती

डॉ. अखिलेश मिश्रा

दलहन अनुभाग, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

उत्तर प्रदेश में लंबी अवधि वाली अरहर (Pigeonpea) वर्षा आधारित कृषि प्रणाली की महत्वपूर्ण दलहनी फसल है। इसकी प्रारंभिक वृद्धि धीमी होने तथा पौधों के बीच पर्याप्त खाली स्थान उपलब्ध रहने के कारण अंतरवर्तीय फसल प्रणाली अपनाने की व्यापक संभावना रहती है। अरहर आधारित intercropping system भूमि उपयोग दक्षता, संसाधन संरक्षण, जोखिम प्रबंधन तथा किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लंबी अवधि वाली अरहर में अंतरवर्तीय फसल (Intercropping) अपनाना उत्तर प्रदेश की वर्षा आधारित कृषि के लिए अत्यंत लाभकारी माना जाता है। अरहर की प्रारंभिक वृद्धि धीमी होती है तथा पौधों के बीच पर्याप्त खाली स्थान रहता है, जिसका उपयोग दूसरी फसलों को उगाकर किया जा सकता है। इससे भूमि, नमी, प्रकाश एवं पोषक तत्वों का बेहतर उपयोग होता है तथा किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। साथ ही, यदि किसी कारणवश अरहर की उपज प्रभावित होती है, तो अंतरवर्तीय फसल आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती है।

परिचयः

उत्तर प्रदेश में दलहन उत्पादन बढ़ाने एवं कृषि प्रणाली की स्थिरता बनाए रखने के लिए अरहर आधारित अंतरवर्तीय फसल प्रणाली एक प्रभावी विकल्प है। लंबी अवधि वाली अरहर लगभग 240–280 दिन तक खेत में रहती है तथा शुरुआती 60–90 दिनों तक पौधों के मध्य पर्याप्त खाली स्थान उपलब्ध रहता है। इस अवधि में कम अवधि वाली फसलों को सम्मिलित कर कुल उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। अंतरवर्तीय फसल प्रणाली न केवल कुल जैविक उत्पादन बढ़ाती है, बल्कि वर्षा आधारित क्षेत्रों में जोखिम कम करती है तथा भूमि एवं पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता में सुधार करती है तथा इनकी विशेषता यह है कि ये अधिक जैवभार उत्पन्न करती हैं, गहरी जड़ प्रणाली विकसित करती हैं तथा वर्षा आधारित परिस्थितियों में भी अपेक्षाकृत स्थिर उत्पादन देने की क्षमता रखती हैं। उत्तर प्रदेश में बढ़ती जनसंख्या, पोषण सुरक्षा तथा मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने की आवश्यकता को देखते हुए लंबी अवधि वाली अरहर की खेती का महत्व और अधिक बढ़ गया है। यह फसल केवल किसानों की आय बढ़ाने में ही सहायक नहीं है, बल्कि मिट्टी में जैविक नत्रजन स्थिरीकरण के माध्यम से भूमि की उर्वरता सुधारने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

उत्तर प्रदेश की जलवायु लंबी अवधि वाली अरहर की खेती के लिए अनुकूल मानी जाती है। अरहर उष्ण एवं आर्द्र जलवायु की फसल है तथा इसके अच्छे विकास के लिए 25–30 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त माना जाता है। इसकी खेती के लिए अच्छी जल निकासी वाली दोमट, बलुई दोमट तथा मध्यम काली मिट्टियाँ सर्वोत्तम रहती हैं। जिन क्षेत्रों में वर्षा 700–1200 मिमी के बीच होती है, वहाँ लंबी अवधि वाली अरहर सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। हालांकि, जलभराव की स्थिति फसल के लिए हानिकारक होती है, क्योंकि इससे जड़ सड़न एवं उकठा रोग की संभावना बढ़ जाती है। इसलिए खेत का समतलीकरण एवं जल निकास व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए।

उत्तर प्रदेश में लंबी अवधि वाली अरहर के साथ सबसे अधिक अपनाई जाने वाली अंतरवर्तीय फसलें हैं उड़द, मूंग, सोयाबीन, मूंगफली, तिल, बाजरा, ज्वार, मक्का तथा कुछ क्षेत्रों में कपास और सब्जियां। अरहर, उड़द या अरहर + मूंग प्रणाली विशेष रूप से लोकप्रिय है क्योंकि ये फसलें कम अवधि में तैयार होकर अतिरिक्त आय देती हैं और मिट्टी की उर्वरता भी बढ़ाती हैं। अरहर + सोयाबीन प्रणाली मध्य एवं बुंदेलखंड क्षेत्रों में सफल पाई गई है, जबकि अरहर + तिल प्रणाली कम वर्षा वाले क्षेत्रों में उपयोगी मानी जाती है।

सिफारिश की जाने वाली कुछ प्रमुख अंतरवर्तीय प्रणालियाँ इस प्रकार हैं :

- अरहर + उड़द (1:2 या 1:3 अनुपात) – एक कतार अरहर के बाद 2–3 कतार उड़द।
- अरहर + मूंग (1:2 अनुपात) – प्रारंभिक अतिरिक्त आय के लिए उपयुक्त।
- अरहर + सोयाबीन (1:2 या 1:3) – उच्च कुल उत्पादकता के लिए लाभकारी।
- अरहर + तिल (1:2) – कम वर्षा वाले क्षेत्रों में उपयोगी।

- अरहर + मक्का (1:1 या 1:2) – सिंचित या अच्छी वर्षा वाले क्षेत्रों में।
- अरहर + मूंगफली (1:3) – हल्की भूमि वाले क्षेत्रों में अच्छी।

अंतरवर्तीय खेती का प्रमुख लाभ यह है कि इससे भूमि समतुल्य अनुपात (LER) सामान्यतः 1.2–1.6 तक प्राप्त हो सकता है, अर्थात एक ही भूमि से अकेली फसल की तुलना में 20–60 प्रतिशत तक अधिक भूमि उपयोग दक्षता प्राप्त होती है। आर्थिक दृष्टि से देखें तो केवल लंबी अवधि वाली अरहर से यदि 18–22 क्विंटल/हेक्टेयर उत्पादन मिलता है, तो अंतरवर्तीय प्रणाली अपनाने पर कुल शुद्ध लाभ में लगभग ₹15,000 से ₹50,000 प्रति हेक्टेयर तक अतिरिक्त वृद्धि संभव हो सकती है, जो फसल बाजार मूल्य और मौसम पर निर्भर करती है।

उपयुक्त जलवायु एवं भूमिः

लंबी अवधि वाली अरहर गर्म एवं आर्द्र जलवायु में अच्छी होती है। इसके लिए 25^0–30^0C तापमान उपयुक्त रहता है। जल निकास वाली दोमट से बलुई दोमट भूमि सर्वोत्तम रहती है। जलभराव वाली भूमि से बचना चाहिए क्योंकि इससे जड़ रोग बढ़ते हैं।

बुवाई का समय एवं विधिः

लंबी अवधि वाली अरहर की बुवाई सामान्यतः जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के मध्य तक की जाती है, जब मानसून की वर्षा प्रारंभ हो जाती है। समय से बुवाई करने पर पौधों का प्रारंभिक विकास अच्छा होता है तथा बाद की अवस्थाओं में सूखे का प्रभाव कम पड़ता है। बुवाई के लिए कतार से कतार दूरी लगभग 75–90 सेंटीमीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 25–30 सेंटीमीटर रखना उपयुक्त माना जाता है। सामान्यतः 12–15 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। बीज को 4–5 सेंटीमीटर गहराई पर बोना चाहिए ताकि अंकुरण अच्छा हो सके। उचित पौध संख्या बनाए रखना अधिक उत्पादन के लिए आवश्यक है।

बीज उपचारः

बीज उपचार लंबी अवधि वाली अरहर उत्पादन तकनीक का एक महत्वपूर्ण भाग है। बुवाई से पहले बीज को उपयुक्त फफूंदनाशी से उपचारित करने से प्रारंभिक रोगों से सुरक्षा मिलती है। इसके अतिरिक्त राइजोबियम एवं फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (PSB) कल्चर से बीज उपचार करने पर जड़ों में गांठों का विकास अच्छा होता है, जिससे जैविक नत्रजन स्थिरीकरण बढ़ता है तथा पौधों को आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता बेहतर होती है। यह तकनीक उत्पादन लागत घटाने के साथ–साथ मृदा स्वास्थ्य सुधारने में भी सहायक होती है।

उर्वरक प्रबंधनः

अरहर की अच्छी उपज लेने के लिए 10–15 कि.ग्रा. नत्रजन, 40–45 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 20 किग्रा. सल्फर की प्रति हे. आवश्यकता होती है। अरहर की अधिक से अधिक उपज के लिए फास्फोरस युक्त उर्वरकों जैसे

उत्तर प्रदेश के लिए देर से पकने वाली लंबी अवधि की अरहर की प्रमुख प्रजातियां निम्न हैं

क्र.सं.	प्रजाति	बोने का उपयुक्त सयम	पकने की अवधि (दिनों मे)	उपज (कु.हे.)
1.	बहार	जुलाई	250–260	25–30
2.	अमर	जुलाई	260–270	25–30
3.	नरेन्द्र अरहर–1	जुलाई	260–270	25–30
4.	आजाद	जुलाई	260–270	25–30
5.	पूसा–9	जुलाई	260–270	25–30
6.	पी.डी.ए.–11	सितम्बर का प्रथम पखवारा	225–240	18–20
7.	मालवीय विकास (एम.ए.6)	जुलाई	250–270	25–30
8.	मालवीय चमत्कार (एम.ए.एल.13)	जुलाई	230–250	30–32
9.	नरेन्द्र अरहर 2	जुलाई	240–245	30–32

सिंगल सुपर फास्फेट, डाई अमोनियम फास्फेट का प्रयोग करना चाहिए। सिंगल सुपर फास्फेट प्रति हे. 250 कि.ग्रा. या 100 कि.ग्रा. डाई अमोनियम फास्फेट तथा 20 किग्रा. सल्फर पंक्तियों में बुवाई के समय चोंगा या नाई की सहायता से देना चाहिए जिससे उर्वरक का बीज के साथ सम्पर्क न हो। यह उपयुक्त होगा कि फास्फोरस की सम्पूर्ण मात्रा सिंगल सुपर फास्फेट से दी जाय जिससे 12 प्रतिशत सल्फर की पूर्ति भी हो सके। यूरिया खाद की थोड़ी मात्रा (15–20 कि.ग्रा. प्रति हे.) केवल उन खेतों में जो नत्रजन तत्व में कमजोर हो देना चाहिए। उर्द जैसी सह–फसलों को अरहर के लिए प्रयुक्त खाद की आधी मात्रा दें। ज्वार तथा बाजरा की सह फसलों के रूप में बुवाई के समय उनकी पंक्तियों में 20 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हे. की दर से दें तथा एक महीना बाद 10 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर की टापड्रेसिंग करें। सितम्बर में बुवाई हेतु 30 से 40 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर नत्रजन के प्रयोग से अच्छी उपज प्राप्त होती है।

खरपतवार एवं सिंचाई प्रबंधनः

खरपतवार प्रबंधन लंबी अवधि वाली अरहर में अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि प्रारंभिक 45–60 दिनों तक खरपतवार प्रतिस्पर्धा उत्पादन को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकती है। बुवाई के 25–30 दिन बाद पहली तथा 45–50 दिन बाद दूसरी निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। कतारों के बीच गुड़ाई करने से मिट्टी में वायु संचार बढ़ता है तथा नमी संरक्षण भी होता है। कुछ क्षेत्रों में खरपतवार नियंत्रण हेतु यांत्रिक एवं रासायनिक दोनों विधियों का संयुक्त उपयोग भी प्रभावी पाया गया है। लंबी अवधि वाली अरहर मुख्यतः वर्षा आधारित परिस्थितियों में उगाई जाती है, फिर भी महत्वपूर्ण वृद्धि अवस्थाओं पर पर्याप्त नमी उपलब्ध होना आवश्यक है। फूल आने, फली बनने तथा दाना भरने की अवस्था में यदि नमी की कमी हो तो उत्पादन प्रभावित हो सकता है। ऐसी स्थिति में पूरक सिंचाई देना लाभकारी होता है। दूसरी ओर, अधिक पानी या जलभराव से जड़ों को नुकसान पहुंचता है, इसलिए जल निकास व्यवस्था अत्यंत आवश्यक है।

लंबी अवधि वाली अंतरवर्तीय खेती अरहर आधारित प्रणाली की सफलता उचित प्रबंधन पर निर्भर करती है। समय पर बुवाई, उचित कतार अनुपात, संतुलित पोषण, खरपतवार नियंत्रण तथा जल निकास व्यवस्था अत्यंत महत्वपूर्ण है। जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम पखवाड़े तक बुवाई करना उपयुक्त माना जाता है। अरहर की कतार दूरी 75–90 सेमी रखने से अंतरवर्तीय फसल के लिए पर्याप्त स्थान उपलब्ध रहता है। प्रारंभिक 45–60 दिनों तक खरपतवार नियंत्रण पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

रोग एवं कीट प्रबंधनः

अरहर की फसल में उकठा रोग, स्टेरिलिटी मोजैक रोग तथा फली छेदक कीट प्रमुख समस्याएँ हैं। इनकी रोकथाम के लिए समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन अपनाना चाहिए। रोगरोधी किस्मों का उपयोग, फसल चक्र अपनाना, संतुलित उर्वरक प्रबंधन, समय पर निगरानी तथा आवश्यकता अनुसार नियंत्रण उपाय अपनाने से नुकसान कम किया जा सकता है। जैविक एवं यांत्रिक उपायों को प्राथमिकता देने से लागत घटती है तथा पर्यावरणीय प्रभाव भी कम होता है।

कटाई एवं उपजः

लंबी अवधि वाली अरहर की कटाई सामान्यतः जनवरी–फरवरी में होती है। अच्छी वैज्ञानिक खेती अपनाने पर 25–30 क्विंटल/हेक्टेयर तक उपज प्राप्त की जा सकती है।

निष्कर्षः

अंततः, उत्तर प्रदेश में लंबी अवधि वाली अरहर की खेती किसानों के लिए आर्थिक, पोषणीय तथा पर्यावरणीय दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्नत किस्मों, संतुलित पोषण, उचित फसल प्रबंधन तथा समेकित रोग–कीट नियंत्रण तकनीकों को अपनाकर किसान उत्पादन एवं लाभ दोनों बढ़ा सकते हैं। बदलती जलवायु परिस्थितियों और टिकाऊ कृषि की आवश्यकता को देखते हुए लंबी अवधि वाली अरहर भविष्य की कृषि प्रणाली में महत्वपूर्ण स्थान रखती है साथ ही यह फसल भूमि की उर्वरता बढ़ाकर टिकाऊ कृषि में भी योगदान देती है।

उत्तर प्रदेश में खरीफ ऋतु में उगाई जाने वाली तिलहनी फसलें

डॉ. महक सिह

अर्थवनस्पति विद् तिलहन/निदेशक, शोध

चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

उत्तर प्रदेश में खरीफ में चार तिलहनी फसले प्रमुख रूप से उगायी जाती हैं, जैसे तिल, मूँगफली, सोयाबीन एवं अण्डी अच्छा उत्पादन लेने हेतु निम्न आधुनिक कृषि क्रियाए करने से अच्छी उपज प्राप्त कर सकते हैं।

तिल

खेत की तैयारीः

अच्छी पैदावार के लिए उत्तम जल निकाल वाली भूमि की आवश्यकता होती है। एक जुताई मिटटी पलटने हल से व 2–3 जुताइयाँ कल्टीवेटर से करना चाहिए।

भूमि शोधनः

फसल को भूमि जनित रोगों से बचाने के लिए *ट्राइकोडरमा हारजियेनम* 2 प्रतिशत डब्लू पी की 2.5 कि.ग्रा. प्रति हे. मात्रा 60–75 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद में मिलाकर हल्के पानी का छींटा देकर 8–10 दिन तक छाया में रखने के उपरान्त आखिरी जुताई के समय खेतों में मिला दें।

बीज दर तथा शोधनः

3 से 4 क्रि.ग्रा. बीज/हे. का प्रयोग करें। बीज जनित रोगों से बचाव हेतु 2.50 ग्राम थीरम या 2 ग्राम, कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत डब्लू पी. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से शोधन हेतु प्रयोग करें।

बुवाई का समय एवं विधिः

पश्चिमी उत्तर प्रदश में जुलाई का दूसरा पखवारा उपयुक्त है। लाइन से लाइन की दूरी 30 सेमी. से 45 सेमी रखें। बुन्देलखण्ड में बुवाई का उपयुक्त समय जून का अन्तिम सप्ताह है।

संतुलित उर्वरकों का प्रयोगः

30 कि.ग्रा. नत्रजन 15 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 25 कि.ग्रा. गन्धक प्रति हे. की दर से प्रयोग करें। नत्रजन की आधी मात्राा एवं फास्फोरस, पोटाश तथा गन्धक की पूरी मात्रा, बुवाई के समय बेसल ड्रेसिंग के रूप में प्रयोग करें तथा नत्रजन की शेष आधी मात्रा प्रथम निराई–गुडाई के समय प्रयोग करें।

निराई गुडाईः

प्रथम निराई गुडाई बुवाई के 15 से 20 दिनों बाद दूसरी निराई गुडाई 30 से 35 दिनों बाद करें। निराई–गुडाई करते समय पौधों का

उन्नतिशील प्रजातियाँ

प्रजाति	फसल अवधि (दिनों में)	उपज (कु./हे.)	विशेषता/रोग, बीमारी अवरोधक	उपर्युक्त
आर.टी. 346	85–90	9–10	बहुफलीय	सम्पूर्ण उ.प्र.
आर.टी. 351	85–90	9–10	फलियाँ एकल सन्मुखी	सम्पूर्ण उ.प्र.
शुभ्रा	90–95	9–10	फाइलोडी अवरोधी	सम्पूर्ण उ.प्र.
गुजरात तिल–10	90–95	8–9	एकल फलियाँ	सूखाग्रस्त क्षेत्र
प्राची	85–90	7–8	फलियाँ एकल	सम्पूर्ण उ.प्र.
प्रगति	90–95	10–11	फलियाँ एक सन्मुखी	सम्पूर्ण उ.प्र.
सावित्री	85–90	7–8	एकल फलियाँ	सम्पूर्ण उ.प्र.
शेखर	90–95	10–11	फलियाँ एकल सन्मुखी	सम्पूर्ण उ.प्र.
तरूण	90–95	11–12	फलियाँ एकल सन्मुखी	सम्पूर्ण उ.प्र.

विरलीकरण करके उनकी आपस की दूरी 10 से 12 सेमी. कर लें। एलाक्लोर 50 ई.सी. 1.25 लीटर प्रति हे. बुवाई के 3 दिन के अन्दर प्रयोग करने से खरपतवारों का नियंत्रण हो जाता है।

सिंचाईः आवश्यकतानुसार करनी चाहिए।

फसल सुरक्षाः

पत्ती लपेटक व फलीबेधकः

उपचारः क्यूनालफास 25 ई.सी 1.5 लीटर प्रति हेक्टेयर या मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत चूर्ण 25 कि/हे. की दर से।

तिल की फाइलोडीः

उपचारः बुवाई के समय कूंड में फोरेट 10 जी–15 कि.ग्रा. प्रति हे. की दर से प्रयोग किया जाय।

मिथाइल ओ डिमेटान 25 ई. सी 1 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

फाइटोफथोरा झुलसाः

उपचारः 3 कि.ग्रा कॉपर आक्सीक्लोराइड या 2.5 किग्रा. मैकोजेब प्रति हे. की दर से आवश्यकतानुसार छिड़काव दो–तीन बार करना चाहिए।

गुणवत्ता से भरपूर पपीते की वैज्ञानिक खेती

रिद्धिमा त्रिपाठी[1], प्रो. विवेक कुमार त्रिपाठी[2], उपेन्द्र यादव[1] एवं डॉ. सोमेन्द्र वर्मा[1]

[1]शोद्यार्थी, फल विज्ञान विभाग; [2]निदेशक प्रसार एवं अधिष्ठाता, उद्यान संकाय एवं [3]टीचिंग एसोसिएट
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

पपीते का वानस्पतिक नाम कैरिका पपाया है। कैरिका शब्द प्रत्यय के रूप में प्रयुक्त होता है क्योंकि पपीता कैरिकेसी परिवार से संबंधित है। यह मुख्यतः अमेरिका में पाया जाता है, लेकिन अब इसकी खेती अन्य क्षेत्रों में भी की जा सकती है। यह एक शाकीय पौधा है जिसे लोकप्रिय रूप से पपीता के नाम से जाना जाता है। पपीता एक प्रकार का उष्णकटिबंधीय वृक्ष है, इसे मेक्सिको और दक्षिण अमेरिका के उत्तरी क्षेत्रों का मूल निवासी माना जाता है। आजकल पपीते की व्यापक रूप से खेती की जाती है क्योंकि इसका उपयोग कई दवाओं और औषध विज्ञान में किया जाता है। पपीता नारंगी–पीले रंग का होता है और कई देशों में नाश्ते और जूस के रूप में पसंद किया जाता है। मेक्सिको के मूल निवासी पपीते ने दुनिया भर में लोकप्रियता हासिल की है और भारत अब वैश्विक उत्पादन में अग्रणी है। इस फल का प्रभावशाली पोषण संबंधी गुण स्वास्थ्य के लिए काफी फायदेमंद है। यह फल कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, लिपिड और आहारीय रेशों से भरपूर होता है। हालाँकि पपीता एक फल देने वाला पौधा है, लेकिन इसका जीवनकाल लगभग 3 से 4 वर्ष का होता है। इस विशेष अवधि में पपीते के पौधे द्वारा उत्पादित फल की मात्रा जलवायु और मिट्टी की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। *कैरिका पपीता* आमतौर पर वियतनाम और थाईलैंड जैसे कई देशों में कच्चा खाया जाता है। कुछ जगहों पर इस कच्चे हरे फल को पकवान के रूप में पकाया जाता था और इसे इसी रूप में पसंद किया जाता था। यहाँ तक कि पपीते के काले बीज भी खाए जाते हैं और इनका स्वाद तीखा और मसालेदार होता है।

पपीता के पोषक तत्वः

पपीता न केवल अपने अच्छे स्वाद के लिए बल्कि अपने औषधीय गुणों के लिए भी प्रसिद्ध है। पपीते के फल और इसके रस में ऑक्सीकरणरोधी और सूजन–रोधी गतिविधियां होती हैं जो प्रतिरक्षा प्रणाली को बढ़ावा दे सकती हैं और शरीर को हृदय और तंत्रिका संबंधी विकारों से बचा सकती हैं। इसी तरह पत्तियों फलों और बीजों में रोगाणुरोधी गुण होते हैं। हरे फल और पत्तियों का उपयोग सौंदर्य प्रसाधनों में किया जाता है क्योंकि इनमें पपेन और अन्य किण्वक होते हैं। पपीता त्वचा की देखभाल और मरम्मत के लिए फायदेमंद है। पपीते में विटामिन ए होता है, जो नई कोशिकाओं के निर्माण को तेज करता है और त्वचा की बाहरी परतों की रक्षा करता है। फल विटामिन सी से भी भरपूर होता है, लगभग 157 ग्राम के एक छोटे पपीते के फल में निम्नलिखित गुण होते हैं, 67.5 किलो कैलोरी (ऊर्जा), 138 ग्राम पानी, 0.74 ग्राम प्रोटीन, 2.67 ग्राम फाइबर, 31.4 ग्राम कैल्शियम (C), 33 मिलीग्राम मैग्नीशियम, 268 मिलीग्राम पोटैशियम, 12.6 मिलीग्राम सोडियम (Na), 95.6 मिलीग्राम विटामिन सी, 73.8 माइक्रोग्राम विटामिन ए, 430 माइक्रोग्राम बी–कैरोटीन।

पपीता की प्रमुख किस्मेंः

ताइवान, 786, पूसा नन्हा, लाल मिर्च, हरी बेरी, आइस बेरी, रास्पबेरी, मारिओला, पपीते की कुछ मुख्य किस्में है।

व्यावसायिक रूप से पपीते का प्रजनन बीज द्वारा किया जाता है। ऊतक संवर्धन तकनीक केवल अनुसंधान प्रयोगशालाओं तक ही सीमित है। बीजों को एक से अधिक मौसम के लिए (लम्बे समय तक) संग्रहीत नहीं किया जा सकता है, क्योंकि बीज थोड़े समय के लिए रहते हैं।

पपीता में नियंत्रित परागण के अभाव और बीज प्रवर्धन के कारण किस्में अस्थाई हैं और एक ही किस्म में विभिन्नता पाई जाती है। अतः फूल आने से पहले नर और मादा पौधों का अनुमान लगाना कठिन है। इनमें कुछ प्रचलित किस्में जो देश के विभिन्न भागों में उगाई जाती हैं और अधिक संख्या में मादा फूलों के पौधे मिलते हैं मुख्य हैं। हनीडियू, कुर्ग हनीडियू, वाशिंगटन, CO–1, CO–2, CO–3, फल उत्पादन और पपेन उत्पादन के लिए CO–5, CO–6, एम.एफ.–1 और पूसा मेजस्टी मुख्य किस्में हैं। उत्तरी भारत में तापक्रम का उतर चढ़ाव अधिक होता है। अतः उभयलिंगी फूल वाली किस्में ठीक उत्पादन नहीं दे पाती हैं। CO–1, पंजाब स्वीट, पूसा डेलिसियास, पूसा मेजस्टी, पूसा जाइंट, पूसा ड्वार्फ,

पूसा नन्हा (म्यूटेंट) आदि किस्में जिनमें मादा फूलों की संख्या अधिक होती है और उभयलिंगी हैं, उत्तरी भारत में काफी सफल हैं।

पपीता के उत्पादन के लिए उपयुक्त जलवायुः

पपीता एक उष्ण कटिबंधीय फल है, परंतु इसकी खेती समशीतोष्ण जलवायु में भी की जा सकती है। ज्यादा ठंड से पौधे के विकास पर खराब असर पड़ता है। इसके फलों की बढ़वार रूक जाती है। फलों के पकने व मिठास बढ़ने के लिए गरम मौसम बेहतर है। व्यावसायिक स्तर पर पपीता की खेती ठंडे प्रदेशों को छोड़ कर सम्पूर्ण भारत मे की जा सकती है। यह मुख्य रूप से उष्ण प्रदेशीय फल है इसके उत्पादन के लिए तापक्रम 22–26 डिग्री से.ग्रे. के बीच और 10 डिग्री से.ग्रे. से कम नहीं होना चाहिए क्योंकि अधिक ठंड तथा पाला इसके शत्रु हैं, जिससे पौधे और फल दोनों ही प्रभावित होते हैं। इसके सकल उत्पादन के लिए तुलनात्मक उच्च तापक्रम, कम आर्द्रता और पर्याप्त नमी की जरुरत है।

पपीता की खेती योग्य भूमि या मृदाः

पपीता के सफल उत्पादन के लिए हल्की दोमट या दोमट मृदा जिसमें जलनिकास अच्छा हो सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इसलिए इसके लिए दोमट, हवादार, काली उपजाऊ भूमि का चयन करना चाहिए और इसका पी. एच. मान 6.5–7.5 के बीच होना चाहिए तथा पानी बिलकुल नहीं रुकना चाहिए। मध्य काली और जलोढ़ भूमि भी इसके लिए अच्छी होती है।

पपीते की बुवाईः

पपीते के उत्पादन के लिए नर्सरी में पौधों का उगाना बहुत महत्व रखता है। इसके लिए बीज की मात्रा एक हेक्टेयर के लिए 500 ग्राम पर्याप्त होती है। बीज पूर्ण पका हुआ, अच्छी तरह सूखा हुआ और शीशे की जार या बोतल में रखा हो जिसका मुँह ढका हो और 6 महीने से पुराना न हो, उपयुक्त है। बोने से पहले बीज को 3 ग्राम केप्टान से एक किलो बीज को उपचारित करना चाहिए।

बीज बोने के लिए क्यारी जो जमीन से ऊँची उठी हुई संकरी होनी चाहिए इसके अलावा बड़े गमले या लकड़ी के बक्सों का भी प्रयोग कर सकते हैं। क्यारियाँ जमीन की सतह से 15 सेंटीमीटर ऊंची व 1 मीटर चौड़ी होनी चाहिए। वह स्थान जहाँ तेज धूप तथा अधिक छाया न आये चुनना चाहिए। इसमें 2.5×10×0.5 आकार की क्यारी बनाकर उपरोक्त मिश्रण अच्छी तरह मिला दें, और क्यारी को ऊपर से समतल कर दें। इसके बाद मिश्रण की तह लगाकर 1×2 गहराई पर 3×6 के फासले पर पंक्ति बनाकर उपचारित बीज बो दें और फिर 1×2 गोबर की खाद के मिश्रण से ढ़क कर लकड़ी से दबा दें ताकि बीज ऊपर न रह जाये। यदि गमलों या बक्सों का उगाने के लिए प्रयोग करें तो इनमें भी इसी मिश्रण का प्रयोग करें। बोई गयी क्यारियों को सूखी घास या पुआल से ढक दें और सुबह शाम पानी दें। बोने के लगभग 15–20 दिन भीतर बीज जम जाते हैं। जब पौधे 15 सेंटीमीटर ऊँचे हो जाएँ, तब 0.3 फीसदी फफूंदीनाशक घोल का छिड़काव कर देना चाहिए तथा जब इन पौधों में 4–5 पत्तियाँ और ऊँचाई 25 से.मी. हो जाये तो दो महीने बाद खेत में प्रतिरोपण करना चाहिए, प्रतिरोपण से पहले गमलों को धूप में रखना चाहिए, ज्यादा सिंचाई करने से सड़न और उकठा रोग लग जाता है। उत्तरी भारत में नर्सरी में बीज मार्च–अप्रैल, जून–अगस्त में उगाने चाहिए।

गड्ढे की तैयारी तथा पौधारोपणः

अच्छी तरह से तैयार खेत में 2×2 मीटर की दूरी पर 50×50×50 सेंटीमीटर आकार के गड्ढे मई के महीने में खोद कर 15 दिनों के लिए खुले छोड़ देने चाहिए, ताकि गड्ढों को अच्छी तरह धूप लग जाए और हानिकारक कीड़े–मकोड़े, रोगाणु नष्ट हो जाएँ।

पौधे लगाने के बाद गड्ढे को मिट्टी और गोबर की खाद 50 ग्राम एल्ड्रिन मिलाकर इस प्रकार भरना चाहिए कि वह जमीन से 10–15 सेंटीमीटर ऊँचा रहे। गड्ढे की भराई के बाद सिंचाई कर देनी चाहिए, जिससे मिट्टी अच्छी तरह बैठ जाए।

वैसे पपीते के पौधे जून–जुलाई या फरवरी–मार्च में लगाए जाते हैं, पर ज्यादा बारिश व सर्दी वाले इलाकों में सितंबर या फरवरी–मार्च में लगाने चाहिए। जब तक पौधे अच्छी तरह पनप न जाएँ, तब तक रोजाना दोपहर बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए।

प्लास्टिक थैलियों में बीज उगानाः

इसके लिए 200 गेज और 20×15 सेमी आकार की थैलियों की जरुरत होती है। जिनको किसी कील से नीचे और साइड में छेड़ कर देते हैं तथा 1:1:1 पत्ती की खाद, गोबर और मिट्टी का मिश्रण बनाकर थैलियों में भर देते हैं। प्रत्येक थैली में दो या तीन बीज बो देते हैं। उचित ऊँचाई होने पर पौधों को खेत में प्रतिरोपण कर देते हैं। प्रतिरोपण करते समय थैली के नीचे का भाग फाड़ देना चाहिए।

खाद व उर्वरक का प्रयोगः

पपीता जल्दी फल देना शुरू कर देता है। इसलिए इसे अधिक उपजाऊ भूमि की जरुरत है। अतः अच्छी फसल लेने के लिए 200 ग्राम नाइट्रोजन, 250 ग्राम फॉस्फोरस एवं 500 ग्राम पोटाश प्रति पौधे की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त प्रति वर्ष प्रति पौधे 20–25 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, एक कि.ग्रा. बोनमील और एक कि.ग्रा. नीम की खली की जरुरत पड़ती है। खाद की यह मात्रा तीन बार बराबर मात्रा में मार्च–अप्रैल, जुलाई–अगस्त और अक्टूबर महीनों में देनी चाहिए। उर्वरक देने के बाद हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए।

पाले से पेड़ की रक्षाः

पौधे को पाले से बचाना बहुत आवश्यक है। इसके लिए नवम्बर के अंत में तीन तरफ से सूखी हुई घास से अच्छी प्रकार ढक दें एवं पूर्व–दक्षिण दिशा में खुला छोड़ दें। बाग के चारों तरफ हेज लगा दें जिससे तेज गर्म और ठंडी हवा से बचाव हो जाता है। समय–समय पर धुआँ कर देना चाहिए।

पपीते में कीट, बीमारी व उनकी रोकथामः

प्रमुख रूप से किसी कीड़े से नुकसान नहीं होता है परन्तु वायरस, रोग फैलाने में सहायक होते हैं। इसमें निम्न रोग लगते हैं–

तने तथा जड़ के गलने से बीमारीः

इसमें भूमि के तल के पास तने का ऊपरी छिलका पीला होकर गलने लगता है और जड़ भी गलने लगती है। पत्तियाँ सुख जाती हैं और पौधा मर जाता है। इसके उपचार के लिए जल निकास में सुधार और ग्रसित पौधों को तुंरत उखाड़कर फेंक देना चाहिए। पौधों पर एक प्रतिशत वोरडोक्स मिश्रण या कॉपर आक्सीक्लोराइड को 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर स्प्रे करने से काफी रोकथाम होती है।

डेम्पिग ओंफः

इसमें नर्सरी में ही छोटे पौधे नीचे से गलकर मर जाते हैं। इससे बचने के लिए बीज बोने से पहले सेरेसान या एग्रोसन जी.एन. से उपचारित करना चाहिए तथा सीड बेड को 2.5% फार्मेल्डिहाइड घोल से उपचारित करना चाहिए।

मौजेक (पत्तियों का मुड़ना):

इससे प्रभावित पत्तियों का रंग पीला हो जाता है व डंठल छोटा और आकार में सिकुड़ जाता है। इसके लिए 250 मि. ली. मैलाथियान 50 ई.सी. 250 लीटर पानी में घोलकर स्प्रे करना काफी फायदेमंद होता है।

चैंपाः

इस कीट के बच्चे व प्रौढ़ दोनों पौधे के विभिन्न हिस्सों का रस चूसते हैं और विषाणु रोग फैलाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए डायमेथोएट 30 ईसी 1.5 मिलीलीटर या इमिडाक्लोप्रिड 0.3 मिली. 1 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।

लाल मकड़ीः

इस कीट का आक्रमण पत्तियों व फलों की सतहों पर होता है। इसके प्रकोप के कारण पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं और बाद में लाल भूरे रंग की हो जाती हैं। इसकी रोकथाम के लिए डायमेथोएट 30 ईसी 1.5 मिलीलीटर को 1 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

पद विगलनः

यह रोग पीथियम फ्यूजेरियम नामक फफूंदी के कारण होता है। रोगी पौधे की बढ़वार रूक जाती है। पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं और पौध सड़कर गिर जाता है। इसकी रोकथाम के लिए रोग वाले हिस्से को खुरचकर उस पर ब्रासीकोल 2 ग्राम को 1 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

एनथ्रेक्नोजः

इस रोग का असर पत्तियों व फलों पर होता है, जिससे इनकी वृद्धि रूक जाती है। इससे फलों के ऊपर भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए ब्लाईटाक्स 3 ग्राम को 1 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

पपीते के अच्छे उत्पादन के लिए सिंचाईः

पानी की कमी तथा निराई–गुड़ाई न होने से पपीते के उत्पादन पर बहुत बुरा असर पड़ता है। अतः दक्षिण भारत की जलवायु में सर्दियों में 8–10 दिन तथा गर्मी में 6 दिन के अंतर पर पानी देना चाहिए। उत्तर भारत में अप्रैल से जून तक सप्ताह में दो बार तथा जाड़े में 15 दिन के अंतर पर सिंचाई करनी चाहिए। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पानी तने को छूने न पाए अन्यथा पौधे में गलने की बीमारी लगने का अंदेशा रहेगा इसलिए तने के आस–पास मिट्टी ऊँची रखनी चाहिए। पपीता का बाग साफ सुथरा रहे इसके लिए प्रत्येक सिंचाई के बाद पेड़ों के चारों तरफ हल्की गुड़ाई अवश्य करनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रणः

पपीते के बगीचे में तमाम

खरपतवार उग आते हैं, जो जमीन से नमी, पोषक तत्त्वों, वायु व प्रकाश वगैरह के लिए पपीते के पौधे से मुकाबला करते हैं, जिससे पौधे की बढ़वार व उत्पादन पर उल्टा असर पड़ता है। खरपतवारों से बचाव के लिए जरूरत के मुताबिक निकाई–गुड़ाई करनी चाहिए। बराबर सिंचाई करते रहने से मिट्टी की सतह काफी कठोर हो जाती है, जिससे पौधे की बढ़वार पर उल्टा असर पड़ता है। लिहाजा 2–3 बार सिंचाई के बाद थालों की हल्की निराई–गुड़ाई कर देनी चाहिए।

पपेन का उत्पादनः

पपेन (Papain) कच्चे पपीते (*Carica Papaya*) के फलों से निकलने वाले दूधिया लेटेक्स (दूध) से प्राप्त एक शक्तिशाली एंजाइम है। इसके उत्पादन के लिए, परिपक्व लेकिन कच्चे फलों पर 2–3 मिमी गहरे चीरे लगाकर लेटेक्स एकत्र किया जाता है। इस एकत्र किए गए दूध को सुखाकर कच्चा पपेन पाउडर बनाया जाता है, जिसका उपयोग मांस को नरम करने, फार्मास्यूटिकल्स और सौंदर्य प्रसाधनों में होता है। बेहतर उत्पादन के लिए सुबह 6 से 10 बजे के बीच दूध निकालना सबसे अच्छा माना जाता है। पपेन उत्पादन के लिए CO–5 या CO–6 जैसी उच्च दूध देने वाली पपीता किस्मों का चयन करें।

पपीते की उपजः

आमतौर पर पपीते की उन्नत किस्मों से प्रति पौध 35–50 किलोग्राम उपज मिल जाती है, जबकि इस नई किस्म से 2–3 गुणा ज्यादा उपज मिल जाती है।

पैकिंग एवं विपणनः

पपीते की पैकिंग और विपणन में सही कटाई अवस्था (हल्का पीला रंग), कोमल हैंडलिंग (दस्ताने का उपयोग), ग्रेडिंग (आकारानुसार) और 10–12°C पर 85–90% आर्द्रता के साथ वेंटिलेटेड बक्सों (क्रेडिटेड बॉक्स) में पैकिंग, फलों की शेल्फ लाइफ को 1–4 सप्ताह तक बढ़ाती है। बाजार के लिए कोमल, दाग–रहित और समान आकार के फलों की पैकिंग से अच्छी कीमत (₹ 250–400 क्विंटल) मिलती है । पके हुए साबुत पपीते को कमरे के तापमान पर लगभग 1 सप्ताह तक रखा जा सकता है, जबकि फ्रिज में यह 3 सप्ताह तक ताजा रह सकता है।

औषधीय फल आँवलाः वैज्ञानिक खेती एवं मूल्य संवर्धन

उपेन्द्र यादव[1], प्रो. विवेक कुमार त्रिपाठी[2], रिद्धिमा त्रिपाठी[1], स्वरूप मणि[1] एवं डॉ. सौरभ तिवारी[3]

[1]शोद्यार्थी, फल विज्ञान विभाग; [2]निदेशक प्रसार एवं अधिष्ठाता, उद्यान संकाय एवं [3]टीचिंग एसोसिएट
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

आंवला, जिसे अमृतफल के नाम से भी जाना जाता है, एक अत्यंत महत्वपूर्ण औषधीय फल है। हिंदी में अनौला या औरा, संस्कृत में धात्री अथवा आमलकी, बंगाली में अम्लाकी तथा अंग्रेजी में इंडियन गूसबेरी कहा जाता है। आंवला एक उपोष्णकटिबंधीय फल प्रजाति है, जिसे शुष्क उपोष्णकटिबंधीय जलवायु में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। यह यूफोरबियासी कुल से संबंधित है तथा द्विगुणित जीनोम (2n=18) वाला पौधा है, जिसकी उत्पत्ति दक्षिण भारत में मानी जाती है।

विश्व स्तर पर आंवले की खेती श्रीलंका, क्यूबा, हवाई, फ्लोरिडा, ईरान, इराक, त्रिनिदाद, पाकिस्तान एवं चीन में की जाती है। भारत में इसकी खेती मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, गुजरात, आंध्र प्रदेश, राजस्थान और तमिलनाडु में होती है। उत्तर प्रदेश में प्रतापगढ़, वाराणसी, आजमगढ़, सुल्तानपुर, रायबरेली, जौनपुर, सीतापुर, कानपुर, आगरा एवं मथुरा इसके प्रमुख उत्पादक जिले हैं।

पोषण एवं औषधीय महत्वः

आंवला एक अत्यधिक पौष्टिक फल है तथा विटामिन 'सी' (लगभग 600 मि.ग्रा./100 ग्राम गूदा) का समृद्ध स्रोत है। इसमें अमरूद, नींबू एवं टमाटर की तुलना में भी अधिक विटामिन 'सी' पाया जाता है। आंवले में उपस्थित शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट्स के कारण उबालने अथवा सुखाने के बाद भी विटामिन 'सी' की मात्रा स्थिर बनी रहती है। इसके अतिरिक्त, इसमें पेक्टिन तथा खनिज तत्व जैसे आयरन, कैल्शियम और फॉस्फोरस प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।

आंवला अपने औषधीय गुणों के लिए प्रसिद्ध है। इससे निर्मित औषधियों का उपयोग एनीमिया, अतिसार, दंतशूल, ज्वर एवं घावों के उपचार में किया जाता है। यह त्रिदोष नाशक, हृदय को बल देने वाला तथा नेत्र रोगों, अम्लपित्त, संग्रहणी, मंदाग्नि, गठिया, सूजन एवं विभिन्न प्रकार के ज्वरों में उपयोगी माना जाता है। आंवले का उपयोग शैम्पू, हेयर ऑयल, डाई, दंतमंजन एवं सौंदर्य प्रसाधनों के निर्माण में भी किया जाता है।

जलवायु एवं मृदाः

आंवला उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु का पौधा है तथा शुष्क उपोष्ण कटिबंधीय परिस्थितियों में अच्छा विकास करता है। एक परिपक्व आंवले का वृक्ष शून्य से नीचे के तापमान तथा 46°C तक के उच्च तापमान को सहन करने की क्षमता रखता है। पुष्प कलिकाओं के विकास हेतु गर्म मौसम अनुकूल होता है, जबकि जुलाई–अगस्त में फल विकास के लिए पर्याप्त आर्द्रता आवश्यक होती है।

आंवला विभिन्न प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है, किंतु इसकी खेती के लिए अच्छी जल निकास वाली रेतीली दोमट मिट्टी सर्वोत्तम मानी जाती है। भारी मिट्टी एवं उच्च जलस्तर वाले क्षेत्र इसके लिए उपयुक्त नहीं होते। 6.5 से 9.5 पीएच मान वाली मृदा, जिसमें उचित जल निकास हो, आंवले की वृद्धि एवं विकास के लिए अनुकूल होती है।

किस्मेंः

भारत की विभिन्न जलवायु परिस्थितियों में व्यावसायिक रूप से उगाई जाने वाली प्रमुख किस्में हैं–NA-4, NA-5, NA-6, NA-7, NA-9, NA-10, आनंद–1, आनंद–2, गोमा ऐश्वर्या एवं लक्ष्मी–52। इसके अतिरिक्त, बनारसी, फ्रांसिस एवं चकैया किस्में भी अपनी विशिष्ट विशेषताओं के लिए जानी जाती हैं। एक आदर्श किस्म में शीघ्र एवं नियमित फलन, बौना कद, अधिक उपज, आकर्षक एवं चमकदार मध्यम आकार के फल, कम रेशा, उच्च विटामिन 'सी' तथा अच्छी भंडारण क्षमता होनी चाहिए।

प्रवर्धनः

आँवला का प्रवर्धन बीज एवं वानस्पतिक विधियों द्वारा किया जाता है। बीज द्वारा प्रवर्धन मुख्यतः मूलवृंत तैयार करने के लिए किया जाता है, क्योंकि बीज से उगाए गए पौधों में अधिक विविधता होती है और वे देर से फल देते हैं। व्यावसायिक खेती के लिए वानस्पतिक प्रवर्धन अधिक उपयुक्त होता है। आँवले में पैच बडिंग सबसे अधिक प्रचलित और सफल विधि है। इसके लिए 8–12 माह पुराने स्वस्थ मूलवृंत का उपयोग किया जाता है। पैच बडिंग के लिए मई–जून (मानसून

की शुरुआत) का समय सर्वोत्तम होता है। इस विधि से तैयार पौधे शीघ्र फलन करते हैं, एकरूप होते हैं तथा अधिक उपज देते हैं।

बाग की स्थापनाः

बाग लगाने के लिए मई माह में 8×8 मीटर की दूरी पर 1×1×1 मीटर आकार के गड्ढे खोदकर उन्हें लगभग एक माह तक खुली धूप में छोड़ दिया जाता है। इसके बाद गड्ढों में 50 प्रतिशत ऊपरी मिट्टी को 20–25 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद के साथ मिलाकर भर दिया जाता है तथा क्लोरपाइरीफॉस (2–3 मि.ली./लीटर) घोल से उपचारित किया जाता है। सोडिक मिट्टी में जीआर मान के अनुसार 5–8 किलोग्राम जिप्सम अथवा पाइराइट मिलाना लाभकारी होता है। वर्षा ऋतु में, वर्षा के तुरंत बाद स्वस्थ कलिकायुक्त पौधों का रोपण करना चाहिए।

उच्च घनत्व रोपण प्रणालीः

उच्च घनत्व रोपण प्रणाली का उद्देश्य कम समय में अधिक उत्पादकता प्राप्त करना है। इसमें पौधों की संख्या बढ़ाकर प्रति इकाई क्षेत्रफल से अधिक उपज प्राप्त की जाती है। आंवले में दोहरी हेज रो प्रणाली, वर्गाकार हेज रो, युग्म एवं समूह प्रणाली अपनाई जा सकती हैं। गोधरा में किए गए प्रयोगों के अनुसार, वर्षा आधारित परिस्थितियों में दोहरी हेज रो प्रणाली से वर्गाकार प्रणाली की तुलना में 132.39 प्रतिशत अधिक (255.90 क्विंटल/हेक्टेयर) उपज प्राप्त हुई।

खाद एवं उर्वरकः

एक वर्ष आयु के पौधों को 15 किलोग्राम गोबर की खाद, 100 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फॉस्फोरस एवं 100 ग्राम पोटाश देना चाहिए। यह मात्रा दस वर्षों तक क्रमशः बढ़ाई जाती है। आधी मात्रा जनवरी में पुष्पन से पूर्व तथा शेष अगस्त में फल विकास के समय दी जाती है। क्षारीय मृदाओं में जिंक सल्फेट एवं पोटाश का प्रयोग लाभकारी होता है। सूक्ष्म पोषक तत्वों (Zn, B) का पर्णीय छिड़काव फल झड़ने को कम करता है।

फल तुड़ाई एवं उपजः

आँवले की शारीरिक परिपक्वता का निर्धारण केवल रंग के आधार पर ही नहीं, बल्कि विशिष्ट गुरुत्व (1.07–1.24), कुल घुलनशील ठोस पदार्थ और अम्लता के अनुपात (TSS/अम्ल अनुपात 5–6) के आधार पर भी किया जाता है। पूर्ण परिपक्व अवस्था में तुड़ाई किए गए फल प्रसंस्करण तथा ताजे उपयोग दोनों के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं। आँवले के फल पेड़ पर ही 20–30 दिनों तक बिना गुणवत्ता में अधिक कमी आए सुरक्षित रह सकते हैं, जिससे तुड़ाई का समय सुविधानुसार तय किया जा सकता है।

उपज की दृष्टि से, आँवला एक दीर्घजीवी और अधिक उत्पादन देने वाला फल वृक्ष है। ग्राफ्टेड पौधे रोपण के 4–5 वर्ष बाद फल देना प्रारंभ कर देते हैं, जबकि बीज से उगाए गए पौधों में फलन अपेक्षाकृत देर से होता है। एक पूर्ण विकसित एवं स्वस्थ आँवला का वृक्ष प्रति वर्ष औसतन 80–120 किलोग्राम फल उपज देता है, जो किस्म, पौधे की आयु, पोषण प्रबंधन, जलवायु एवं बाग प्रबंधन पर निर्भर करता है। उन्नत किस्मों, उचित खाद–उर्वरक प्रबंधन तथा आधुनिक रोपण प्रणालियों को अपनाने से प्रति हेक्टेयर उपज में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है।

रोग, कीट एवं विकारः

प्रमुख रोगों में रस्ट, टहनी झुलसा, पत्ती धब्बा, पाउडरी मिल्ड्यू एवं कॉलर रॉट शामिल हैं। प्रमुख कीटों में छाल खाने वाली इल्ली, तना छेदक एवं गुठली भेदक कीट पाए जाते हैं।

फल नेक्रोसिस बोरोन की कमी से होता है, जिसे 0.6% बोरेक्स के तीन छिड़काव (15 दिन के अंतराल पर) से नियंत्रित किया जा सकता है।

मूल्य संवर्धनः

आँवले का मूल्य संवर्धन न केवल इसकी उपयोगिता को बढ़ाता है, बल्कि किसानों, उद्यमियों और प्रसंस्करण उद्योगों के लिए अतिरिक्त आय के अवसर भी सृजित करता है। आँवले से तैयार किए जाने वाले मूल्य संवर्धित उत्पादों की विविधता इसे एक व्यावसायिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण फल बनाती है।

आँवले के प्रमुख खाद्य मूल्य संवर्धित उत्पादों में मुरब्बा, कैंडी, चटनी, अचार, शरबत, जूस, स्क्वैश, जैम, सॉस, टॉफी, लड्डू, सुपारी और कतरन शामिल हैं। आँवला मुरब्बा सबसे लोकप्रिय उत्पादों में से एक है, जो स्वादिष्ट होने के साथ–साथ स्वास्थ्यवर्धक भी होता है तथा लंबे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। आँवला कैंडी बच्चों और युवाओं में विशेष रूप से लोकप्रिय है, जबकि आँवला शरबत और जूस गर्मियों में स्वास्थ्यवर्धक पेय के रूप में व्यापक रूप से उपयोग किए जाते हैं। प्रसंस्करण के दौरान भी आँवले में उपस्थित विटामिन–'सी' काफी हद तक सुरक्षित रहता है, जिससे इन उत्पादों का पोषण मूल्य बना रहता है।

आयुर्वेदिक एवं औषधीय उद्योग में आँवले का अत्यधिक महत्व है।

च्यवनप्राश, त्रिफला चूर्ण, आँवला चूर्ण, सिरप, टैबलेट, कैप्सूल और मधुमेह नियंत्रक औषधियाँ आँवले से ही तैयार की जाती हैं। ये उत्पाद रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने, पाचन शक्ति सुधारने, नेत्र रोगों, त्वचा विकारों तथा बालों के स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी माने जाते हैं। आयुर्वेदिक दवाओं में आँवले की बढ़ती मांग के कारण इसका मूल्य संवर्धन एक स्थायी और लाभकारी व्यवसाय के रूप में उभर रहा है।

कॉस्मेटिक एवं पर्सनल केयर उद्योग में भी आँवले का व्यापक उपयोग किया जाता है। आँवले से शैम्पू, हेयर ऑयल, हेयर डाई, हेयर टॉनिक, फेस क्रीम, फेस पैक और साबुन जैसे उत्पाद तैयार किए जाते हैं। आँवला बालों को मजबूत बनाने, समय से पहले सफेद होने से रोकने और त्वचा को स्वस्थ बनाए रखने में सहायक होता है। प्राकृतिक और हर्बल उत्पादों की बढ़ती मांग के कारण आँवला आधारित सौंदर्य प्रसाधनों का बाजार तेजी से विस्तार कर रहा है।

आँवले का पाउडर और सूखा गूदा भी महत्वपूर्ण मूल्य संवर्धित उत्पाद हैं, जिनका उपयोग औषधीय, खाद्य और पोषण अनुपूरक उद्योग में किया जाता है। इसके अतिरिक्त, आँवले से वाइन, सिरका और फंक्शनल फूड्स जैसे नवीन उत्पाद भी विकसित किए जा रहे हैं। इस प्रकार आँवले का मूल्य संवर्धन न केवल फलों की बर्बादी को कम करता है, बल्कि रोजगार सृजन, ग्रामीण उद्यमिता और किसानों की आय वृद्धि में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सही प्रसंस्करण तकनीक, गुणवत्तापूर्ण कच्चा माल और उचित विपणन रणनीति के माध्यम से आँवला आधारित मूल्य संवर्धित उत्पाद कृषि–आधारित उद्योगों के लिए एक उज्ज्वल भविष्य प्रस्तुत करते हैं।

परम्परागत उद्यानिकी फसलें: बदलते मौसम में टिकाऊ कृषि की आधारशिला

जतिन कटियार[1], डॉ. राजीव[1] एवं प्रो. विवेक कुमार त्रिपाठी[2]

सब्जी विज्ञान विभाग[1] एवं [2]निदेशक प्रसार एवं अधिष्ठाता, उद्यान संकाय
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

आज जब पूरी दुनिया जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से जूझ रही है, तब कृषि और विशेष रूप से उद्यानिकी क्षेत्र सबसे अधिक प्रभावित हो रहा है। मौसम का असन्तुलन, अनियमित वर्षा, लू की बढ़ती तीव्रता और असमय पाला ये सभी कारक खेती को जोखिम भरा बना रहे हैं। ऐसे समय में परम्परागत उद्यानिकी फसलें केवल एक विकल्प नहीं बल्कि टिकाऊ और भविष्य उन्मुख समाधान के रूप में सामने आ रही हैं।

परम्परागत उद्यानिकी फसलें: क्या और क्यों ?

परम्परागत उद्यानिकी फसलें वे हैं जिन्हें स्थानीय समुदाय वर्षों से उगाते आए हैं। ये फसलें प्राकृतिक रूप से उस क्षेत्र की जलवायु, मिट्टी और पारिस्थितिकी के अनुरूप विकसित हुई हैं। इन फसलों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये कम संसाधनों में भी अच्छी पैदावार देने की क्षमता रखती हैं।

जलवायु परिवर्तन और चुनौतियाँ:

वर्तमान समय में किसानों को कई नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है?

- वर्षा का असमान वितरण
- भूजल स्तर में गिरावट
- तापमान में अत्यधिक उतार–चढ़ाव
- कीट और रोगों का बढ़ता प्रकोप

टिकाऊपन के प्रमुख आधार:

1. **जल संरक्षण में सहायक:**

   परम्परागत फसलों को अपेक्षाकृत कम पानी की आवश्यकता होती है। ये वर्षा आधारित खेती के लिए उपयुक्त हैं और सूखे की स्थिति में भी जीवित रह सकती हैं।

2. **मिट्टी की सेहत में सुधार:**

   इन फसलों की जड़ें मिट्टी की संरचना को मजबूत करती हैं और उसमें जैविक पदार्थों की मात्रा बढ़ाती हैं। इससे मिट्टी की उर्वरता लम्बे समय तक बनी रहती है।

3. **प्राकृतिक कीट नियंत्रण:**

   स्थानीय किस्मों में कीट और रोगों के प्रति स्वाभाविक प्रतिरोध होता है। इससे रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता कम हो जाती है, जो पर्यावरण और स्वास्थ्य दोनों के लिए लाभकारी है।

4. **दीर्घकालीन उत्पादन क्षमता:** फलदार परम्परागत वृक्ष कई वर्षों तक उत्पादन देते हैं, जिससे किसानों को स्थायी आय का स्रोत मिलता है।

5. **जैव विविधता और पर्यावरण संरक्षण:** पारंपरिक फसलों की खेती से जैव विविधता को बढ़ावा मिलता है। जब किसान अलग–अलग प्रकार की फसलें उगाते हैं, तो मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है और पारिस्थितिकी तंत्र संतुलित रहता है। इसके विपरीत, एक ही प्रकार की फसल (मोनोकल्चर) लम्बे समय में मिट्टी को कमजोर कर देती है।

6. **बाजार में बढ़ती मांग:** आज के उपभोक्ता स्वास्थ्य के प्रति अधिक जागरूक हो रहे हैं। जैविक और पारंपरिक उत्पादों की मांग तेजी से बढ़ रही है। यही कारण है कि इन फसलों से किसानों को बेहतर कीमत मिलने की संभावना भी बढ़ गई है।

मिश्रित और बहुस्तरीय खेती की भूमिका:

परम्परागत उद्यानिकी का एक महत्वपूर्ण पहलू है मिश्रित खेती और बहुस्तरीय खेती पद्धति में एक ही खेत में अलग–अलग ऊँचाई और अवधि वाली फसलें उगाई जाती हैं, जैसे?

- ऊपरी स्तर पर फलदार वृक्ष (कटहल, आम)
- मध्य स्तर पर झाड़ीयाँ (करोंदा, बेर)
- निचले स्तर पर सब्जियाँ या औषधीय पौधे

बाजार और ब्रांडिंग की संभावनाएं:

आज लोकल और ऑर्गेनिक

उत्पादों की मांग तेजी से बढ़ रही है। यदि परम्परागत फसलों को सही पैकेजंग, ब्रांडिंग और विपणन के साथ प्रस्तुत किया जाए, तो ये राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भी अपनी पहचान बना सकती हैं। "Farm to Fork और "Millets Mission" जैसी पहलें इस दिशा में सकारात्मक संकेत देती हैं।

समाधान और रणनीतियाँ:

- **जागरूकता और प्रशिक्षण:** किसानों को परम्परागत फसलों के लाभ और आधुनिक तकनीकों के बारे में प्रशिक्षित करना जरूरी है।
- **मूल्य संवर्धन:** उत्पादों को प्रोसेस कर बेहतर दाम प्राप्त किए जा सकते हैं।
- **सहकारी मॉडल और FPOs:** किसान समूह बनाकर बाजार में बेहतर पहुँच और मोल–भाव की शक्ति बढ़ा सकते हैं।
- **सरकारी समर्थन:** सब्सिडी, बीज वितरण और विपणन सहायता जैसी योजनों को प्रभावी ढंग से लागू करना चाहिए।

भविष्य की राह: परम्परा और तकनीक का संगम:

यदि परम्परागत ज्ञान को आधुनिक तकनीकों, जैसे ड्रिप सिंचाई, जैविक उर्वरक और डिजिटल मार्केटिंग के साथ जोड़ा जाए, तो यह खेती और भी अधिक लाभकारी बन सकती है।

युवाओं की भागीदारी, स्टार्टअप्स और नवाचार इस क्षेत्र को नई ऊँचाइयों तक ले जा सकते हैं।

निष्कर्ष:

बदलते मौसम के इस चुनौतीपूर्ण समय में परम्परागत उद्यानिकी फसलें एक स्थायी समाधान प्रस्तुत करती हैं। ये फसलें न केवल प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करती हैं, बल्कि किसानों की आजीविका को भी सुरक्षित बनाती हैं।

जिमीकंद की खेती

डॉ. पृथ्वी पाल[1], डॉ. विनोद प्रकाश[2], डॉ. नौशाद आलम[1] एवं डॉ. ओमकार सिंह यादव[1]

[1]वैज्ञानिक एवं [2]प्रभारी अधिकारी कृषि विज्ञान केन्द्र, फिरोजाबाद

सूरन एक बहुवर्षीय कन्दीय पौधा है। जिसे हमारे देश में जिमीकंद, ओल और सूरन इत्यादि नामों से भी जाना जाता है। हमारे देश में प्राचीन काल से ही सूरन की खेती हो रही है तथा यह अपने औषधीय एवं पोषक गुणों के कारण सब्जियों में अपना अलग स्थान रखता है। सूरन कार्बोहाइड्रेट का सस्ता और अच्छा स्रोत है। इसमें मुख्य रूप से प्रोटीन, वसा, खनिज पदार्थ, कैल्शियम व फास्फोरस प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। सूरन का प्रयोग सब्जी, अचार, चटनी, पापड़, आटा, चिप्स और नमकीन आदि के रूप में किया जाता है। सूरन में अनेक औषधीय गुण पाए जाते हैं। बवासीर, पेचिश, तिल्ली के सूजन, रक्त विकार, दमा, वमन, फेफड़े के सूजन और पेटदर्द आदि में औषधि के रूप में सूरन का प्रयोग किया जाता है। यह खुजली और उदर संबंधी विकारों में भी लाभदायक है। हल्के छायादार स्थानों में भलीभाँति उगने और विकसित होने की क्षमता के कारण सूरन की व्यावसायिक खेती किसानों के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

जलवायु एवं मृदाः

सूरन की खेती से उपज प्राप्त करने के लिए उत्तम जल निकास वाली दोमट अथवा बलुई दोमट भूमि सर्वोत्तम है, सामान्यतः सूरन सभी प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है परन्तु खराब जल निकास एवं भारी मृदा में इसकी वांछित उपज नहीं मिलती है। सूरन की खेती गर्म जलवायु में 25–30 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान के बीच होती है। आर्द्र जलवायु प्रारंभ में पत्तियों की वृद्धि में सहायक तथा कंद बनने की अवस्था में शुष्क जलवायु उपयुक्त होती है। सामान्यतः 1000 से 1200 मिमी. वर्षा फसल की बढ़वार तथा कंद उत्पादन के लिए उपयुक्त है।

प्रजातियांः

सूरन की कई प्रजातियां जैसेः संतरागाछी, गजेन्द्रा, पद्मा, कुसुम, आजाद, श्री, आतिरा आदि प्रमुख हैं। आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या द्व ारा विकसित प्रजाति नरेंद्र रवि, नरेन्द्र आशा अधिकतम उत्पादन देने वाली, खाने में स्वादिष्ट एवं कनकनाहट रहित हैं। इन प्रजातियों की उत्पादन क्षमता 600 से 800 कुन्टल प्रति हेक्टेयर है।

प्रवर्धनः

सूरन का प्रसारण वानस्पतिक विधि द्वारा किया जाता है, जिसके लिए पूर्ण कन्द या घनकन्द प्रयोग में लाए जाते हैं। कन्दों के माध्यम से प्रसारण करने के लिए प्रत्येक कन्द को 500 ग्राम से 700 ग्राम तक के टुकड़ों में काट लिया जाता है। 500 से 700 ग्राम के पूर्ण कन्दों की उपलब्धता की स्थिति में बुआई करने पर प्रस्फुटन शीघ्र होता है जिसके परिणामस्वरूप अधिक उपज की प्राप्ति होती है। कन्दों को बुआई से पहले 2 प्रतिशत तूतिया के घोल या 0.1 प्रतिशत कैलेक्सीन (1 ग्राम प्रति लीटर पानी) में 10 मिनट तक डुबोकर 24 घन्टे तक छाया में रखकर सुखाने के उपरांत उपयोग में लाना चाहिए। बड़े आकार के कन्दों को बुआई के लिए टुकड़ों में काटते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक टुकड़े में कम से कम एक कलिका अवश्य रहे। कन्द से बुआई के लिए टुकड़ों को बनाते समय इस बात का ध्यान रहे कि कन्द का कालर वाला भाग ऊपर होना चाहिए एवं प्रत्येक टुकड़े में कालर का कुछ भाग अवश्य रहे।

खेत की तैयारीः

पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने बाद 3 से 4 जुताई 20 से 22 सेंमी. की गहराई तक कल्टीवेटर से कर पाटा लगाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए।

बुआई का समयः

बाजार की मांग एवं अधिकतम उत्पादन के लिए सूरन का दीपावली के आसपास तैयार होना आवश्यक है। जिसके लिए 15 मार्च से 15 मई तक का समय बुआई के लिए उपयुक्त होता है।

बुआई की विधिः

सूरन की बुआई के लिए प्रायः दो विधियां उपयोग में लायी जाती हैं। 1. समतल खेत में 2. गड्ढों में सूरन के कन्दों को लगाने के लिए 50×50 सेंमी. लम्बाई एवं चौड़ाई तथा 30 सेंमी. गहराई के गड्ढे बनाये जाते हैं। इन गड्ढों में कन्द लगाने के 20–25 दिन पहले गोबर की भलीभाँति सड़ी खाद या कम्पोस्ट मिट्टी में मिलाकर भर दी

जाती है। सूरन को उठी हुई मेंड़ों पर लगाने से समतल क्यारी की अपेक्षा अच्छी उपज प्राप्त होती है। छोटे कन्दों (250–300 ग्राम) के लिए पंक्ति से पंक्ति एवं पौध से पौध की दूरी 50×50 सेंमी. एवं बड़े कन्दों (500 ग्राम या इससे अधिक) के बुआई के लिए पंक्ति से पंक्ति एवं पौध से पौध की दूरी 90–100 सेंमी. रखना चाहिए।

बीज शोधनः

सूरन के कन्दों की कटाई कर बोने पर कटे हुए भाग में सड़न शुरू हो जाती है परिणामस्वरूप जमाव प्रभावित होता है। अतः सूरन की अच्छी उपज लेने के लिए कन्दों का बोने से पूर्व शोधन करना आवश्यक है। इसके लिए डाईथेन एम–45 को 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में 20–30 मिनट तक डुबोकर उपचारित करने के पश्चात बुआई करने पर बीज कन्द को सड़न एवं मृदा से होने वाली बीमारियों को रोकने में काफी सहायता मिलती है। एक लीटर पानी में 20 ग्राम तूतिया को मिलाकर बीज कन्द उपचारित करना भी काफी प्रभावी होता है।

खाद एवं उर्वरकः

सूरन के लिए 250 कुन्तल भली–भाँति सड़ी हुई गोबर की खाद के अतिरिक्त 40 किग्रा. नत्रजन, 40 किग्रा. फास्फोरस एवं 60 किग्रा. पोटाश की प्रति हेक्टेयर आवश्यकता होती है। फास्फोरस की पूरी मात्रा तथा नत्रजन एवं पोटाश की आधी मात्रा कन्दों की बुआई के समय तथा शेष आधी मात्रा बुआई के 80–90 दिन बाद देना चाहिए।

सिंचाई एवं अन्तः सस्य क्रियाएंः

सूरन में सिंचाई की आवश्यकता आरम्भिक अवस्था में मानसून के आने से पहले पड़ती है। ध्यान रहे कि सूरन के खेत में पानी न रूकने पाए इससे कन्दों में बीमारी या सड़न की सम्भावना रहती है। सूरन में खरपतवार की समस्या ज्यादा नही होती है। वर्षा ऋतु में एक बार हाथ से निराई करने या स्टाम्प (पेन्डीमेथिलीन) खरपतवारनाशी के 3.5 लीटर दवा प्रति हेक्टेयर की दर से 1000 लीटर पानी में मिलाकर बुआई के बाद लेकिन खरपतवार उगने से पहले छिड़काव करने से खरपतवार की समस्या से निजात मिल सकती है। सूरन की बुआई के 50–60 दिन बाद एक बार गुड़ाई करके मिट्टी चढ़ाने से अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। सूरन की बुवाई के तुरन्त बाद पुआल अथवा पत्तियों से खेत में मल्विंग कर देने से अच्छे जमाव के साथ–साथ सिंचाई की भी आवश्यकता कम होती है साथ ही खरपतवार कम होने से उपज भी अच्छी मिलती है।

रोग एवं कीट प्रबन्धनः

झुलसा रोगः

यह सूरन का जीवाणु जनित रोग है। इस रोग के प्रकोप से उपज पर काफी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके प्रकोप से सूरन की पत्तियों पर छोटे–छोटे गोलाकार हल्के भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो आगे चलकर सूखकर काले पड़ जाते हैं तथा पत्तियां धीरे–धीरे पीली पड़ जाती हैं। इस रोग का प्रकोप बढ़ने से इसका असर तनों तथा कन्दों तक आ जाता है।

प्रबन्धनः

1. बीज कन्द का चयन रोग रहित स्वस्थ पौधों से करना चाहिए।
2. बुआई से पहले कन्दों का शोधन 2 प्रतिशत तूतिया या कैलेक्सीन 1 ग्राम प्रति लीटर या डाईथेन एम –45 के 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल में 20–30 मिनट तक उपचारित करके बुवाई करना चाहिए।
3. सूरन की खड़ी फसल में रोग के लक्षण दिखाई पड़ते ही रोग ग्रसित पौधों पर एग्रीमाईसिन की 10 पीपीएम के घोल का छिड़काव तीन बार 15–20 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए या रीडोमिल दवा को एक लीटर पानी में 2 ग्राम की दर से घोलकर 2–3 छिड़काव करना चाहिए।

तना गलन रोगः

सूरन की यह बीमारी लगभग सभी क्षेत्रों में पाई जाती है, विशेष कर उन स्थानों पर इसका असर ज्यादा होता है जहाँ पर पानी का जमाव अधिक होता है और काफी दिनों से एक ही खेत में इसकी खेती की जा रही है। यह सूरन की मृदा जनित रोग है अतः इसका पहला लक्षण कालर भाग पर दिखाई पड़ता है। इसमें पानी के गोल धब्बे के साथ पूरा सफेदी लिए हुए धब्बे दिखाई देते हैं। इस रोग में पत्तियां आगे की ओर पीली दिखाई पड़ने लगती हैं और धीरे–धीरे पूरा पौधा पीला पड़ जाता है और अन्ततः कालर वाले भाग के सड़ने के कारण तना सिकुड़ कर गिर जाता है।

प्रबन्धनः

1. समुचित फसल चक्र अपनाएं।
2. रोग ग्रसित पौधों एवं उनके अवशेषों को तुरंत खेत से बाहर कर देना चाहिए।
3. खेत से जल निकास की समुचित व्यवस्था करना चाहिए।

4. बुआई से पहले कन्दों को डाईथेन एम–45 या रीडोमिल का 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल तैयार कर कन्द को 20–30 मिनट तक उपचारित करके बोना चाहिए।

5. एक माह के अन्तराल पर पौधे के किनारे की भूमि को कैप्टान के 2 प्रतिशत घोल से दो बार तर करना चाहिए।

मोजैकः

यह सूरन का विषाणु जनित रोग है जिसका पौध की प्रारम्भिक अवस्था में प्रकोप होने पर उत्पादन काफी प्रभावित होता है। यह रोग लगभग सभी सूरन की खेती वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। इस रोग से ग्रसित पौधों की पत्तियों पर हल्के हरे पीले धब्बे बन जाते हैं। प्रभावित पत्तियां सिकुड़ कर विकृत एवं भूरी हो जाती हैं। नई पत्तियों पर इस रोग का प्रकोप ज्यादा दिखाई देता है परिणामस्वरूप पौधों की बढ़वार रूक जाती है। जिसका सीधा असर उत्पादन पर पड़ता है। इस रोग के अधिक संक्रमण की अवस्था में पत्तियों का पीला पड़ना और शिराओं का उभार प्रमुख लक्षण है।

प्रबन्धनः

1. रोगग्रस्त पौधों से बुआई हेतु कन्द का चयन नहीं करना चाहिए।

2. रोगी पौधों को खेत से निकालकर जला अथवा मिट्टी में दबा देना चाहिए।

3. रोग फैलाने वाले कीटों के रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफास (0.05 प्रतिशत) 5 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी में मिलाकर दो बार छिड़काव करना चाहिए।

खुदाई एवं उपजः

सूरन की खुदाई कन्दों की बुआई के 6–7 महीने बाद की जाती है। जब सूरन की पत्तियां पीली पड़कर गिरने लगें तो खुदाई के लिए उपयुक्त समय समझा जाता है। अच्छा बाजार मूल्य प्राप्त करने के लिए इनकी खुदाई पहले भी की जा सकती है। परिपक्व कन्दों को हवादार कमरों में बिना किसी नुकसान के कई महीनों तक रखा जा सकता है। सूरन में प्रति हेक्टेयर कन्दों की उपज 500 से 700 कुन्टल है। उन्नतिशील प्रजातियों के चयन और वैज्ञानिक सस्य तकनीक अपनाकर सूरन में 1000 से 1200 कुन्टल तक उपज प्राप्त किया जा सकता है।

जलवायु परिवर्तन और खरीफ सब्जियाँ : उत्तर प्रदेश के किसानों के सामने चुनौतियाँ और समाधान

श्रुति झा, डॉ. राजीव, डॉ. डी.पी. सिंह एवं डॉ. केशव आर्या

सब्जी विज्ञान विभाग

चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

उत्तर प्रदेश में खरीफ मौसम की सब्जियाँ जैसे भिंडी, लौकी, करेला और तोरई किसानों की आय और आम लोगों के पोषण का मजबूत आधार रही हैं। ये फसलें न केवल ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सहारा देती हैं, बल्कि शहरों की थाली तक ताजी और पौष्टिक सब्जियाँ भी पहुँचाती हैं। लेकिन अब बदलते मौसम ने इस संतुलन को चुनौती देना शुरू कर दिया है। आज किसान केवल खेती नहीं कर रहा, बल्कि मौसम की अनिश्चितताओं, बदलते तापमान और नई–नई समस्याओं से भी जूझ रहा है। खेती अब केवल परंपरा नहीं, बल्कि एक सतत संघर्ष बनती जा रही है।

खरीफ सब्जियाँ क्यों हैं खास?

खरीफ की सब्जियाँ कम समय में तैयार होकर किसानों को जल्दी आय देती हैं, जिससे नकदी प्रवाह बना रहता है। यही वजह है कि छोटे और सीमांत किसान इन पर अधिक निर्भर रहते हैं। इन फसलों की एक और खासियत यह है कि ये विविधता प्रदान करती हैं। भिंडी, लौकी, करेला, तोरई जैसी सब्जियाँ अलग–अलग जलवायु परिस्थितियों में उगाई जा सकती हैं, जिससे जोखिम थोड़ा कम हो जाता है। इसके साथ ही ये सब्जियाँ पोषण का भी महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इनमें विटामिन, खनिज और फाइबर प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो संतुलित आहार के लिए आवश्यक हैं। इसलिए इनकी मांग बाजार में पूरे वर्ष बनी रहती है।

जब मौसम बदलता है, तो खेती भी बदलती हैः

जलवायु परिवर्तन का असर अब खेतों में साफ दिखाई देने लगा है। पहले जहां वर्षा का एक निश्चित समय और पैटर्न हुआ करता था, अब वह पूरी तरह अनिश्चित हो गया है। कभी अचानक भारी वर्षा, तो कभी लंबे समय तक सूखाए इन दोनों स्थितियों ने खेती को जोखिम भरा बना दिया है। बढ़ता तापमान और हीट वेव के कारण पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है। फूल और फल गिरने की समस्या बढ़ जाती है, जिससे उत्पादन पर सीधा असर पड़ता है। कई बार अत्यधिक वर्षा के कारण खेतों में जलभराव हो जाता है, जिससे जड़ों को नुकसान होता है और पौधे कमजोर पड़ जाते हैं। इस तरह बदलता मौसम केवल फसल को ही नहीं, बल्कि किसान की पूरी योजना को प्रभावित कर रहा है।

कीट और रोगः एक बढ़ती चिंता

बदलते मौसम के साथ कीट और रोग भी तेजी से बढ़ रहे हैं। तापमान और आर्द्रता में बदलाव के कारण कीटों के जीवन चक्र में तेजी आती है, जिससे उनका प्रकोप अधिक हो जाता है। सफेद मक्खी और जेसिड जैसे कीट अब अधिक सक्रिय हो गए हैं और फसलों को तेजी से नुकसान पहुंचा रहे हैं। भिंडी में पीला मोजेक वायरस जैसी बीमारियाँ किसानों के लिए बड़ी समस्या बनती जा रही हैं। इसके अलावा, अधिक नमी के कारण फफूंद जनित रोगों का प्रकोप भी बढ़ रहा है। कई बार किसान बार–बार कीटनाशकों का प्रयोग करते हैं, जिससे लागत बढ़ती है और कीटों में प्रतिरोधक क्षमता भी विकसित हो जाती है।

किसानों की बढ़ती मुश्किलेंः

आज किसान कई मोर्चों पर संघर्ष कर रहा है। मौसम का सही अनुमान लगाना कठिन हो गया है, जिससे बुवाई का समय प्रभावित होता है। गलत समय पर बुवाई करने से उत्पादन में कमी आ जाती है। इसके अलावा उत्पादन लागत लगातार बढ़ रही है। बीज, उर्वरक, कीटनाशक और मजदूरी की लागत बढ़ने से किसान की आय पर दबाव पड़ता है। सिंचाई की समस्या भी एक बड़ी चुनौती है। कहीं पानी की कमी है तो कहीं अधिकता। इसके साथ ही कई बार किसानों को अपनी उपज का उचित मूल्य नहीं मिल पाता, जिससे उनका उत्साह कम हो जाता है। तकनीकी जानकारी और आधुनिक साधनों की कमी इस समस्या को और गंभीर बना देती है।

समाधान की राहः क्या किया जा सकता है?

इन चुनौतियों के बावजूद समाधान भी मौजूद हैं। यदि किसान उन्नत और रोग सहनशील किस्मों का चयन करें,

तो काफी हद तक नुकसान कम किया जा सकता है। जल प्रबंधन के लिए ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली उपयोगी साबित हो रही है, जिससे पानी की बचत के साथ–साथ फसल को उचित मात्रा में नमी मिलती है। इसके साथ ही एकीकृत कीट प्रबंधन अपनाकर कीटों और रोगों को नियंत्रित किया जा सकता है। इसमें जैविक और रासायनिक दोनों उपायों का संतुलित उपयोग किया जाता है। फसल चक्र और विविधीकरण अपनाने से भूमि की उर्वरता बनी रहती है और जोखिम कम होता है। साथ ही, किसानों को मौसम पूर्वानुमान और कृषि सलाह सेवाओं का उपयोग करना चाहिए, जिससे वे समय पर सही निर्णय ले सकें।

सरकार की भूमिका भी महत्वपूर्णः

सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाएँ किसानों के लिए सहारा बन रही हैं। फसल बीमा योजना के माध्यम से प्राकृतिक आपदाओं से होने वाले नुकसान की भरपाई संभव है। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के तहत जल संसाधनों का बेहतर उपयोग किया जा रहा है, जिससे सिंचाई सुविधाओं में सुधार हुआ है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना किसानों को अपनी भूमि की स्थिति समझने में मदद करती है, जिससे वे संतुलित उर्वरकों का उपयोग कर सकते हैं। यदि किसान इन योजनाओं का सही तरीके से लाभ लें, तो वे अपनी खेती को अधिक सुरक्षित और लाभकारी बना सकते हैं।

निष्कर्षः बदलते समय के साथ बदलती खेती

जलवायु परिवर्तन एक सच्चाई है, जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। लेकिन सही जानकारी, नई तकनीक और जागरूकता के साथ किसान इस चुनौती को अवसर में बदल सकता है। आज का किसान केवल उत्पादक नहीं, बल्कि एक प्रबंधक और निर्णयकर्ता भी बन चुका है, जो बदलते मौसम के अनुसार अपनी रणनीति तैयार करता है।

खरीफ सब्जियाँ आज भी किसानों की आय का मजबूत आधार हैं, जरूरत है तो बस सही दिशा में कदम बढ़ाने की।

उड़द उत्पादन की ग्रामीण कृषक महिलाओं की आजीविका सुदृढ़ीकरण में भूमिका

डॉ. दिव्या कौशिक[1], डॉ. भूपेंद्र कुमार सिंह[2] एवं डॉ. आयुषी मिश्रा[3]

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ (गृह विज्ञान), [2]प्रभारी के.वी.के. फर्रूखाबाद

[3]शोद्यार्थी, मानव विकास एवं परिवार अध्ययन विभाग

चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

भारत में दलहनी फसलों का विशेष महत्व है क्योंकि ये पोषण सुरक्षा, मिट्टी की उर्वरता संरक्षण तथा किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। खरीफ मौसम में उड़द, मूंग, अरहर, लोबिया एवं सोयाबीन जैसी दलहनी फसलें प्रमुख रूप से उगाई जाती हैं। इनमें उड़द एक महत्वपूर्ण फसल है, जिसका उपयोग ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में व्यापक रूप से किया जाता है। उड़द दाल भारतीय भोजन का महत्वपूर्ण हिस्सा है तथा इसे प्रोटीन का सस्ता एवं सुलभ स्रोत माना जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में दालों का उपयोग परिवार के दैनिक भोजन में विशेष रूप से किया जाता है, जिससे बच्चों, महिलाओं एवं वृद्ध व्यक्तियों को आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। वर्तमान समय में बढ़ती मंहगाई एवं पोषण संबंधी समस्याओं को देखते हुए उड़द जैसी दलहनी फसलों का महत्व और अधिक बढ़ गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषक महिलाएँ खेती से लेकर प्रसंस्करण एवं खाद्य निर्माण तक विभिन्न कार्यों में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। उड़द उत्पादन में महिलाएँ बुवाई, निराई–गुड़ाई, कटाई, दानों की सफाई, भंडारण एवं मूल्य संवर्धन जैसे कार्यों में प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी रहती हैं। कई क्षेत्रों में महिलाएँ स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से उड़द आधारित उत्पाद तैयार कर अतिरिक्त आय अर्जित कर रही हैं। इस प्रकार उड़द उत्पादन ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को मजबूत बनाने का प्रभावी माध्यम बनता जा रहा है।

खरीफ मौसम में उगाई जाने वाली प्रमुख दलहनी फसलें:

खरीफ मौसम में किसान विभिन्न प्रकार की दलहनी फसलें उगा सकते हैं, जिनका उपयोग भोजन, पशु आहार एवं मिट्टी की उर्वरता सुधारने में किया जाता है। प्रमुख खरीफ दलहनी फसलें निम्नलिखित हैं–

- उड़द
- मूंग
- अरहर (तुर)
- लोबिया
- कुल्थी
- सोयाबीन
- राजमा (कुछ पर्वतीय क्षेत्रों में)

इन फसलों की विशेषता यह है कि ये कम पानी एवं कम लागत में भी अच्छी उपज देती हैं। दलहनी फसलें भूमि में नाइट्रोजन स्थिरीकरण कर मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में सहायक होती हैं, जिससे अगली फसल की उत्पादकता में भी सुधार होता है। यही कारण है कि कृषि वैज्ञानिक फसल चक्र में दलहनी फसलों को शामिल करने की सलाह देते हैं।

उड़द का पोषणीय महत्व:

उड़द दाल पोषक तत्वों से भरपूर होती है। इसमें प्रोटीन, आयरन, कैल्शियम, फास्फोरस एवं विटामिन पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं, जो शरीर की वृद्धि एवं स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ एवं बच्चे अक्सर कुपोषण एवं एनीमिया जैसी समस्याओं से प्रभावित रहते हैं, ऐसे में उड़द दाल का नियमित सेवन पोषण स्तर सुधारने में सहायक हो सकता है। उड़द का सेवन शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में मदद करता है। इसमें उपस्थित आयरन रक्त की कमी को दूर करने में सहायक होता है, जबकि कैल्शियम हड्डियों एवं दाँतों को मजबूत बनाता है। गर्भवती एवं स्तनपान कराने वाली महिलाओं के लिए उड़द आधारित भोजन विशेष रूप से लाभकारी माना जाता है। उड़द, तैयार दाल, पापड़, बड़ी, इडली एवं डोसा जैसे खाद्य पदार्थ परिवार के संतुलित आहार का महत्वपूर्ण हिस्सा है। ग्रामीण महिलाएँ पारंपरिक ज्ञान एवं घरेलू संसाधनों के माध्यम से उड़द आधारित पौष्टिक खाद्य पदार्थ तैयार कर परिवार के स्वास्थ्य एवं पोषण को बेहतर बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

ICAR-Indian Institute of Pulses Research द्वारा दलहनी फसलों के

उड़द दाल का पोषणीय मूल्य (प्रति 100 ग्राम):

पोशक तत्व	मात्रा
ऊर्जा	347 कैलोरी
प्रोटीन	24 ग्राम
कार्बोहाइड्रेट	59 ग्राम
वसा	1.5 ग्राम
कैल्शियम	154 मि.ग्रा.
आयरन	9 मि.ग्रा.
फास्फोरस	385 मि.ग्रा.
फाइबर	18 ग्राम

विकास एवं अनुसंधान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए जा रहे हैं। यह संस्थान किसानों के लिए उन्नत, रोग रोधी एवं अधिक उत्पादन देने वाली दलहन किस्मों के विकास पर कार्य कर रहा है। संस्थान द्वारा विकसित किस्में जलवायु परिवर्तन एवं रोगों की समस्या से निपटने में किसानों की सहायता कर रही हैं। (Indian Institute of Pulses Research) IIPR द्वारा विकसित उड़द की नवीन किस्में किसानों के बीच तेजी से लोकप्रिय हो रही हैं। इनमें विशेष रूप से निम्न किस्में महत्वपूर्ण हैं–

इन किस्मों में पीला मोजैक वायरस (MYMV), सर्कोस्पोरा लीफ स्पॉट एवं अन्य रोगों के प्रति सहनशीलता पाई जाती है, जिससे किसानों को उत्पादन हानि कम होती है। ये किस्में कम अवधि में अच्छी उपज देती हैं तथा उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश जैसे राज्यों के लिए उपयुक्त मानी जाती हें। संस्थान द्वारा महिलाओं एवं किसानों के लिए समय–समय पर प्रशिक्षण कार्यक्रम, बीज उत्पादन, मूल्य संवर्धन एवं प्रसंस्करण संबंधी प्रशिक्षण भी आयोजित किए जाते हैं। इससे ग्रामीण महिलाओं को स्वरोजगार एवं उद्यमिता के नए अवसर प्राप्त हो रहे हैं।

प्रमुख उन्नत उड़द किस्में:

किस्में	विशेषताएँ
IPU 11-02	80–85 दिन अवधि, उच्च प्रोटीन (26%), पीला मोजैक रोग प्रतिरोधी
IPU 13-1	70–75 दिन अवधि, अधिक उत्पादन क्षमता,अनेक रोगों के प्रति सहनशील
IPU 10-26	चमकदार काला दाना, उच्च उपज एवं MYMV प्रतिरोधी
IPU 17-2 (दृष्टि)	उन्नत गुणवत्ताएवं बेहतर उत्पादन क्षमता
IPU 19-10 (नर्मदा)	खरीफ मौसम हेतु उपयुक्त, रोग सहनशील
IPU 13-6 (ताप्ती)	नवीन विकसित किस्म, बेहतर अनुकूलन क्षमता

कृषक महिलाओं की भूमिका एवं स्वरोजगार:

ग्रामीण कृषि प्रणाली में महिलाओं की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। उड़द उत्पादन में कृषक महिलाएँ खेत की तैयारी, बीज चयन, बुवाई, खरपतवार नियंत्रण, कटाई एवं भंडारण जैसे कार्यों में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। कई ग्रामीण परिवारों में महिलाएँ खेती के साथ–साथ पशुपालन एवं घरेलू कार्यों की जिम्मेदारी भी निभाती है। उड़द की खेती महिलाओं के लिए अपेक्षाकृत सुविधाजनक मानी जाती है क्योंकि इसमें कम सिंचाई एवं कम लागत की आवश्यकता होती है। महिलाएँ खेतों में श्रम प्रदान करने के साथ–साथ फसल की गुणवत्ता बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उड़द आधारित मूल्य संवर्धित उत्पाद जैसे पापड़, बड़ी, नमकीन एवं स्नैक्स तैयार कर महिलाएँ अतिरिक्त आय अर्जित कर सकती हैं। स्वयं सहायता समूहों (SHGs) के माध्यम से महिलाएँ सामूहिक रूप से लघु उद्योग स्थापित कर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन रही हैं। आजकल बाजार में घर पर बने पारंपरिक एवं पैष्टिक खाद्य पदार्थों की मांग तेजी से बढ़ रही है। यदि महिलाओं को प्रस्स्करण, पैकेजिंग एवं विपणन सम्बन्धी प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जाए, तो वे अपने उत्पादों की बड़े बाजार तक पहुँचा सकती है। कृषि विज्ञान केन्द्रों एवं विभिन्न सरकारी योजनाओं द्वारा ग्रामीण महिलाओं को खाद्य प्रसंस्करण, उद्यमिता एवं मूल्य संवर्धन का प्रशिक्षण दिया जा रहा है, जिससे उनकी आय एवं आत्मविश्वास दोनों में वृद्धि हो रही है। इससे महिलाओं का सामाजिक एवं आर्थिक

सशक्तिकरण भी संभव हो रहा है।

उड़द एक दलहनी फसल होने के कारण मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में सहायक होती है। इसकी जड़ों में उपस्थित राइजोबियम जीवाणु वायुमंडलीय नाइट्रोजन को भूमि में स्थिर करते हैं, जिससे मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है। फसल चक्र में उड़द को शामिल करने से रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम होती है तथा अगली फसल की उत्पादकता बढ़ती है। ग्रामीण महिलाएँ पारंपरिक रूप से जैविक खाद एवं फसल अवशेषों का उपयोग कर टिकाऊ कृषि प्रणाली को बढ़ावा देती रहीं हैं। जलवायु परिवर्तन एवं घटती भूमि उर्वरता की वर्तमान परिस्थितियों में उड़द जैसी दलहनी फसलें टिकाऊ कृषि एवं पोषण सुरक्षा के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। कम पानी एवं कम लागत में उत्पादन देने के कारण उड़द छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए लाभकारी फसल मानी जाती हैं।

उड़द उत्पादन ग्रामीण कृषक महिलाओं की आजीविका सुदृढ़ीकरण का प्रभावी माध्यम है। यह फसल पोषण सुरक्षा, मिट्टी की उर्वरता संरक्षण एवं आय वृद्धि तीनों क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है। उड़द आधारित प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन गतिविधियाँ महिलाओं को स्वरोजगार एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता की दिशा में आगे बढ़ाने में सहायक है। IIPR जैसी संस्थाओं द्वारा विकसित उन्नत किस्में एवं आधुनिक तकनीकें किसानों को बेहतर उत्पादन एवं अधिक लाभ प्राप्त करने में सहायता कर रही हैं। आवश्यकता इस बात की है कि ग्रामीण महिलाओं को वैज्ञानिक खेती, प्रसंस्करण, विपणन एवं उद्यमिता सम्बन्धी प्रशिक्षण प्रदान किए जाएँ ताकि वे उड़द उत्पादन से अधिक लाभ प्राप्त हो सके।

खरीफ कृषि में महिला एग्रीप्रेन्योरशिपः बदलते गाँवों की नई पहचान

डॉ. ऐश्वर्या सिंह[1], डॉ. जया वर्मा[1] एवं डॉ. विनीता सिंह[2]

[1]टीचिंग एसोसिएट एवं [2]विभागाध्यक्ष
प्रसार शिक्षा एवं संचार प्रबंधन विभाग
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

भारत की कृषि व्यवस्था सदियों से ग्रामीण जीवन का आधार रही है। खेत, मौसम और फसलें केवल उत्पादन का माध्यम नहीं, बल्कि गाँवों की संस्कृति और अर्थव्यवस्था का हिस्सा हैं। खरीफ फसलें, जो मुख्यतः वर्षा ऋतु में बोई जाती हैं, देश की खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण रोजगार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। धान, मक्का, ज्वार, बाजरा, सोयाबीन, मूंगफली और दालों जैसी फसलें लाखों परिवारों की आजीविका का आधार हैं। इन फसलों के उत्पादन में महिलाओं की भागीदारी हमेशा से रही है, लेकिन आज उनकी भूमिका केवल खेतों में श्रम करने तक सीमित नहीं रह गई है। अब महिलाएँ कृषि को उद्यमिता, नवाचार और आत्मनिर्भरता के अवसर के रूप में देख रही हैं। यही परिवर्तन "महिला एग्रीप्रेन्योरशिप" के रूप में ग्रामीण भारत की नई पहचान बन रहा है।

पहले ग्रामीण महिलाओं का कृषि कार्यों में योगदान अक्सर अनदेखा रह जाता था। वे बीज बोने, पौध रोपने, निराई–गुड़ाई, खाद प्रबंधन और कटाई जैसे कार्यों में सक्रिय रहती थीं, लेकिन उन्हें किसान या निर्णयकर्ता के रूप में पहचान कम मिलती थी। आज परिस्थितियाँ बदल रही हैं। शिक्षा, जागरूकता, सरकारी योजनाओं और डिजिटल तकनीकों ने महिलाओं के सोचने और कार्य करने के तरीके को बदल दिया है। अब महिलाएँ खेती को केवल पारिवारिक जिम्मेदारी नहीं, बल्कि आय और स्वरोजगार का सशक्त माध्यम मान रही हैं।

खरीफ सीजन में महिला एग्रीप्रेन्योरशिप के अनेक नए रूप देखने को मिल रहे हैं। कई महिलाएँ स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से जैविक खाद, वर्मी कम्पोस्ट और पौधशालाओं का संचालन कर रही हैं। कुछ महिलाएँ स्थानीय बीजों का संरक्षण कर किसानों को गुणवत्तापूर्ण बीज उपलब्ध करा रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में सब्जी उत्पादन, मशरूम उत्पादन, डेयरी, मधुमक्खी पालन और खाद्य प्रसंस्करण जैसे कार्य महिलाओं के लिए अतिरिक्त आय का महत्वपूर्ण स्रोत बन रहे हैं। इससे न केवल परिवार की आर्थिक स्थिति मजबूत हो रही है, बल्कि महिलाओं का आत्मविश्वास भी बढ़ रहा है।

महिला एग्रीप्रेन्योरशिप की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें स्थानीय संसाधनों और पारंपरिक ज्ञान का प्रभावी उपयोग देखने को मिलता है। कई ग्रामीण महिलाएँ खरीफ फसलों से जुड़े उत्पादों को मूल्य संवर्धन के माध्यम से बाजार तक पहुँचा रही हैं। उदाहरण के लिए, मोटे अनाजों से पौष्टिक आटा, धान से तैयार खाद्य पदार्थ, दालों के मिश्रण और घर पर बने मसाले आज स्थानीय बाजारों में लोकप्रिय हो रहे हैं। यह पहल ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नई दिशा दे रही है।

डिजिटल तकनीकों ने महिला किसानों के लिए नई संभावनाओं के द्वार खोले हैं। मोबाइल फोन और इंटरनेट के माध्यम से महिलाएँ अब मौसम की जानकारी, बाजार मूल्य, सरकारी योजनाएँ और कृषि प्रशिक्षण आसानी से प्राप्त कर रही हैं। सोशल मीडिया और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के जरिए कई महिलाएँ अपने उत्पादों की बिक्री भी कर रही हैं। इससे वे स्थानीय बाजारों तक सीमित नहीं रह गई हैं, बल्कि व्यापक उपभोक्ता वर्ग तक पहुँच बना रही हैं। डिजिटल साक्षरता ने महिलाओं को अधिक आत्मनिर्भर और जागरूक बनाया है।

कृषि विस्तार सेवाओं और सरकारी योजनाओं का योगदान भी महिला एग्रीप्रेन्योरशिप को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण है। कृषि विज्ञान केंद्र, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन, स्वयं सहायता समूह और विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम महिलाओं को आधुनिक खेती, मूल्य संवर्धन और विपणन की जानकारी दे रहे हैं। कई राज्यों में महिला किसानों को कृषि यंत्र, ऋण सुविधा और प्रशिक्षण प्रदान किए जा रहे हैं, जिससे वे कम लागत में अधिक उत्पादन करने में सक्षम हो रही हैं।

नई शिक्षा नीति (NEP) ने भी कौशल आधारित शिक्षा और उद्यमिता पर विशेष बल दिया है। इसका सकारात्मक प्रभाव ग्रामीण महिलाओं पर दिखाई दे रहा है। अब महिलाएँ केवल खेती तक सीमित नहीं हैं, बल्कि कृषि आधारित स्टार्टअप और छोटे व्यवसायों की ओर भी कदम बढ़ा

रही हैं। युवा ग्रामीण महिलाएँ कृषि को आधुनिक तकनीक, नवाचार और पर्यावरण संरक्षण के साथ जोड़कर नई पहचान बना रही हैं।

महिलाएँ सतत कृषि और पर्यावरण संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। कई महिलाएँ प्राकृतिक खेती, जैविक उर्वरकों और जल संरक्षण के उपायों को अपनाकर पर्यावरण के अनुकूल कृषि को बढ़ावा दे रही हैं। वे रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से होने वाले नुकसान को समझते हुए पारंपरिक और सुरक्षित खेती की ओर लौट रही हैं। इससे मिट्टी की उर्वरता और पर्यावरण दोनों की रक्षा हो रही है।

हालाँकि महिला एग्रीप्रेन्योरशिप के सामने अनेक चुनौतियाँ भी हैं। ग्रामीण महिलाओं को भूमि स्वामित्व की कमी, सीमित ऋण सुविधा, तकनीकी जानकारी की कमी और बाजार तक पहुँच जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कई बार सामाजिक परंपराएँ और पारिवारिक सीमाएँ भी उनके विकास में बाधा बनती हैं। इसके बावजूद महिलाएँ अपने साहस, मेहनत और नवाचार से इन चुनौतियों को पार कर रही हैं।

आज आवश्यकता इस बात की है कि महिला किसानों को केवल श्रमिक नहीं, बल्कि कृषि विकास की साझेदार और नेतृत्वकर्ता के रूप में देखा जाए। उन्हें आधुनिक प्रशिक्षण, डिजिटल संसाधन, वित्तीय सहायता और विपणन के अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। यदि महिलाओं को सही मंच और सहयोग मिले, तो वे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नई ऊँचाइयों तक पहुँचा सकती हैं।

निष्कर्ष: खरीफ कृषि में महिला एग्रीप्रेन्योरशिप केवल आर्थिक गतिविधि नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की एक सशक्त प्रक्रिया है। महिलाएँ अपने कौशल, नेतृत्व क्षमता और नवाचार के माध्यम से यह सिद्ध कर रही हैं कि कृषि का भविष्य केवल उत्पादन में नहीं, बल्कि उद्यमिता और आत्मनिर्भरता में भी निहित है। आत्मनिर्भर भारत का सपना तभी साकार होगा, जब ग्रामीण महिलाएँ कृषि विकास की मुख्य धारा में सम्मान और अवसर के साथ आगे बढ़ेंगी।

स्मार्ट एग्रो टेक्सटाइल्स द्वारा खरीफ फसलों की सुरक्षाः एक नवीन एवं सतत दृष्टिकोण

रश्मि दूबे[1], डॉ. अर्चना सिंह[2] एवं डॉ. एकता शर्मा[3]

[1]शोधार्थी, [2]सह–प्राध्यापक एवं [3]प्राध्यापक
परिधान एवं वस्त्र विज्ञान विभाग
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

भारत में खरीफ फसलें जैसे धान, मक्का, कपास और सोयाबीन, मुख्यतः मानसून पर निर्भर करती हैं। लेकिन अनियमित वर्षा, तेज धूप, कीटों का प्रकोप और मिट्टी का कटाव किसानों के लिए बड़ी समस्याएं बन जाते हैं। इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए आज के समय में स्मार्ट एग्रोटेक्सटाइल्स एक नई और उपयोगी तकनीक के रूप में सामने आ रहे हैं।

स्मार्ट एग्रोटेक्सटाइल्स विशेष प्रकार के तकनीकी वस्त्र होते हैं, जिन्हें कृषि कार्यों के लिए डिजाइन किया जाता है। ये वस्त्र फसल को बाहरी पर्यावरणीय कारकों जैसे धूप, वर्षा, हवा, कीट और तापमान से सुरक्षा प्रदान करते हैं। "स्मार्ट" शब्द का अर्थ यहाँ यह है कि ये टेक्सटाइल्स परिस्थितियों के अनुसार कार्य करते हैं, जैसे तापमान को नियंत्रित करना, नमी को बनाए रखना या कीटों को दूर रखना। इनका निर्माण मुख्यतः पॉलीप्रोपाइली, पॉलीएथिलीन या अन्य सिंथेटिक एवं बायोडिग्रेडेबल फाइबर से किया जाता है, जो हल्के, मजबूत और टिकाऊ होते हैं। ये कपड़े फसलों को बाहरी नुकसान से बचाने के साथ–साथ उनकी वृद्धि को भी बेहतर बनाते हैं। उदाहरण के लिए, शेडनेट फसल को तेज धूप से बचाता है और तापमान को नियंत्रित करता है, जिससे पौधे स्वस्थ रहते हैं। इसी तरह मल्चिंग फैब्रिक, मिट्टी की नमी बनाए रखता है, जिससे पानी की बचत होती है और बार–बार सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती।

कीटों से बचाव के लिए कीट–रोधी जाल बहुत उपयोगी होते हैं। ये जाल फसल को कीटों से सुरक्षित रखते हैं, जिससे कीटनाशकों का उपयोग कम करना पड़ता है। इससे न केवल लागत कम होती है, बल्कि पर्यावरण भी सुरक्षित रहता है। इसके अलावा, ये टेक्सटाइल्स मिट्टी के कटाव को रोकते हैं और खरपतवार को बढ़ने से भी रोकते हैं।

स्मार्ट एग्रो टेक्सटाइल्स को वर्षों तक दोबारा उपयोग किया जा सकता है। यद्यपि शुरुआत में इनकी लागत थोड़ी अधिक होती है, लेकिन लंबे समय में यह लाभदायक साबित होते हैं क्योंकि इनके उपयोग से उत्पादन में वृद्धि होती है और खर्च कम होता है।

पर्यावरण की दृष्टि से भी यह तकनीक बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग को कम करती है, जिससे मिट्टी और पानी प्रदूषित नहीं होते। वर्तमान समय में बायोडिग्रेडेबल एग्रोटेक्सटाइल्स भी विकसित हो रहे हैं, जो और भी अधिक पर्यावरण–अनुकूल हैं।

आर्थिक लाभः

स्मार्ट एग्रोटेक्सटाइल्स का उपयोग प्रारंभ में महंगा लग सकता है, लेकिन दीर्घकाल में यह लाभ दायक सिद्ध होता है।

- उत्पादन में 15–25% तक वृद्धि
- पानी और कीट नाशकों की लागत में कमी
- 2–3 वर्षों तक पुनः उपयोग

➢ खरीफ फसलों में एग्रो–टेक्सटाइल जैसे कीट–रोधी जाल, मल्च फिल्म और कीट–रोधी जाल का उपयोग पौधों को धूप, कीट और खरपतवार से बचाने के लिए किया जाता है।

➢ इससे मिट्टी की नमी बनी रहती है, पानी की बचत होती है और उत्पादन में लगभग 20–40% तक वृद्धि होती है।

➢ सरकार MIDH (Mission for Integrated Development of Horticulture), PMKSY (Pradhan Mantri Krishi Sinchayee Yojana) और NHM (National Horticulture Mission) योजनाओं के तहत एग्रो–टेक्सटाइल पर लगभग 40 से 60% तक सब्सिडी देती है।

➢ किसान को लागत का लगभग आधा पैसा वापस मिल जाता है, जिससे आधुनिक खेती अपनाना आसान और सस्ता हो जाता है।

फसल	एग्रोटेक्सटाइल का प्रकार	तकनीकी विशेषताएँ	उपयोग की विधि	परिणाम
धान	शेडनेट (35–50%), कीट–रोधी जाल	धूप में खराब न होने वाला, हल्का वह पारगम्य	नर्सरी बेड शेड नेट से ढके अंकुरण के बाद कीट–रोधी जाल लगाए	अंकुरण दर में (15–20%) वृद्धि, पौधों की समान वृद्धि, कीट प्रकोप में कमी होती है स्वस्थ पौध तैयार, हो जाती है ट्रांसप्लांटिंग के बाद बेहतर पौधे तैयार हो जाते हैं।
मक्का	कीट–रोधी जाल, ब्लैक मल्चिंग फैब्रिक	(40–50) ग्राम प्रति वर्ग मीटर, पानी को रोकना,	खेत के चारों ओर कीट–रोधी जाल लगाऐं पौधों के बीच मल्च बिछाएं।	तना छेदक में (25–30%), कमी, मिट्टी की नमी बनी रहती है, खरपतवार कम होता है साथ ही उत्पादन में (15–25%) वृद्धि, सिंचाई की आवश्यकता कम हो जाती है।
सोयाबीन	ब्लैक सिल्वर मल्चिंग फैब्रिक	परा बैंगनी किरण रोधी, नमी संरक्षक	कतारों के बीच मल्च लगाएं।	(15–30%) जल संरक्षण, खरपतवार में कमी, जड़ों का बेहतर विकास हो जाता है पौधों की वृद्धि में सुधार, उत्पादन में वृद्धि होती है।
कपास	शेडनेट (50%), कीट–रोधी जाल	ऊष्मा– रोधी, ताप–प्रतिरोध, वायु–पारगम्य कपड़ा	शुरुआती (25–30), दिन कीट–रोधी जाल से कवर करें बाद में कीट–रोधी जाल का उपयोग करें।	तापमान (2–3ºC) कमी, सफेद मक्खियों का नियंत्रण, पौधों की वृद्धि तेज होती है फाइबर गुणवत्ता में सुधार व उपज में (20%), तक वृद्धि होती है।

क्र.सं.	एग्रोटेक्सटाइल का प्रकार	खरीफ फसल में उपयोग	फसल सुरक्षा में भूमिका
1	शेडनेट	सब्जियाँ, नर्सरी, धान की पौध	तेज धूप से बचाव, तापमान नियंत्रित करता है
2	मल्च मैट	मक्का, गन्ना, सब्जियाँ	खरपतवार नियंत्रण, नमी संरक्षण
3	क्रॉप कवर	दालें, सब्जियाँ, धान	कीट व ठंडी हवा से सुरक्षा
4	एंटी–इंसेक्ट नेट	सब्जियाँ, फल	कीटों (जैसे सफेद मक्खी) से बचाव
5	विंड ब्रेक नेट	ऊँची फसलें (मक्का, गन्ना)	तेज हवा से फसल गिरने से बचाव
6	बर्ड प्रोटेक्शन नेट	धान, मक्का	पक्षियों द्वारा नुकसान से सुरक्षा
7	फसल कवर शीट	नाजुक पौधे	भारी वर्षा व मौसमीय तनाव से सुरक्षा
8	जियो टेक्सटाइल	खेत की मेड़, जल निकासी	मिट्टी कटाव रोकता है, जल प्रबंधन सुधारता है
9	शेड हाउस ग्रीन नेट	सब्जियाँ, फूल	नियंत्रित वातावरण देकर उत्पादन बढ़ाता है
10	ड्रिप सपोर्ट फैब्रिक	बागवानी फसलें	पानी की सही आपूर्ति, जल संरक्षण

फसल	एग्रो–टेक्सटाइल	उपयोग	अनुमानित लागत (₹ हेक्टेयर)	लगत वसूली समय	किसान को मिलने वाली सब्सिडी (₹)
धान	शेडनेट (नर्सरी)	पौध सुरक्षा	30,000–40,000	2–3 सीजन	15,000–20,000 50%
मक्का	मल्च फिल्म	नमी बनाए रखना	25,000–35,000	1–2 सीजन	10,000–17,500 40–50%
सोयाबीन	एग्रोनेट	कीट नियंत्रण	20,000–30,000	2–3 सीजन	10,000–15,000 50%

जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में एग्रोटेक्सटाइल्सः

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन कृषि के लिए एक गंभीर चुनौती बन चुका है, विशेष रूप से खरीफ फसलों के लिए जो पूरी तरह मानसून पर निर्भर होती हैं। अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़, हीट वेव और तापमान में अचानक बदलाव फसल उत्पादन को प्रभावित करते हैं। ऐसे में स्मार्ट एग्रोटेक्सटाइल्स एक जलवायु–लचीला समाधान प्रदान करते हैं। शेड नेट अत्यधिक तापमान और तेज धूप से फसल को बचाकर हीट स्ट्रेस को कम करता है, जबकि मल्चिंग फैब्रिक सूखे की स्थिति में मिट्टी की नमी को बनाए रखता है। इसी प्रकार, कीट–रोधी जाल फसल को कीटों के बढ़ते प्रकोप से बचाता है, जो जलवायु परिवर्तन के कारण अधिक सक्रिय हो जाते हैं। इस प्रकार, एग्रोटेक्सटाइल्स फसलों को प्रतिकूल परिस्थितियों में भी स्थिर उत्पादन देने में सक्षम बनाते हैं।

प्रिसिजन फार्मिंग (सटीक खेती) में भूमिकाः

प्रिसिजन फार्मिंग आधुनिक कृषि का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जिसमें संसाधनों का उपयोग आवश्यकता के अनुसार और सटीक मात्रा में किया जाता है। स्मार्ट एग्रोटेक्सटाइल्स इस प्रणाली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन सकते हैं, विशेष रूप से जब इन्हें सेंसर और तकनीकों के साथ जोड़ा जाता है। उदाहरण के लिए, ऐसे टेक्सटाइल्स विकसित किए जा रहे हैं जिनमें नमी और तापमान मापने वाले सेंसर लगे होते हैं, जो किसान को वास्तविक समय डेटा प्रदान करते हैं। इससे किसान सिंचाई, उर्वरक और अन्य प्रबंधन निर्णयों को अधिक सटीक बना सकता है। इसके अलावा, ड्रिप सिंचाई और मल्चिंग फैब्रिक का संयोजन जल उपयोग दक्षता को और अधिक बढ़ाता है, जिससे संसाधनों की बचत होती है और उत्पादन में वृद्धि होती है।

एग्रोटेक्सटाइल्स और जैविक खेतीः

जैविक खेती में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग सीमित या पूर्णतः प्रतिबंधित होता है, जिससे कीट और खरपतवार नियंत्रण एक बड़ी चुनौती बन जाती है। इस संदर्भ में स्मार्ट एग्रोटेक्सटाइल्स अत्यंत उपयोगी सिद्ध होते हैं। कीट–रोधी जाल एक भौतिक अवरोध बनाकर कीटों को फसल तक पहुँचने से रोकता है, जिससे रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता कम हो जाती है। इसी प्रकार, मल्चिंग फैब्रिक खरपतवार की वृद्धि को नियंत्रित करता है, जिससे खेत में हाथ से निराई–गुड़ाई की आवश्यकता कम होती है। इस प्रकार, एग्रोटेक्सटाइल्स जैविक खेती को अधिक व्यवहारिक और लाभकारी बनाते हैं तथा पर्यावरण–अनुकूल उत्पादन को बढ़ावा देते हैं।

विभिन्न मिट्टी प्रकारों में प्रभावः

एग्रोटेक्सटाइल्स का प्रभाव विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में अलग–अलग होता है। रेतीली मिट्टी में जल धारण क्षमता कम होती है, इसलिए मल्चिंग फैब्रिक का उपयोग अत्यधिक लाभकारी होता है क्योंकि यह नमी को संरक्षित करता है। दोमट मिट्टी, जो संतुलित जल एवं पोषक तत्व प्रदान करती है, उसमें एग्रोटेक्सटाइल्स का उपयोग उत्पादन और गुणवत्ता दोनों में सुधार करता है। वहीं चिकनी मिट्टी में जल भराव की समस्या होती है, ऐसे में शेडनेट और उचित वेंटिलेशन वाले टेक्सटाइल्स का उपयोग जल निकास और वायु संचार को बेहतर बनाता है। इस प्रकार, मिट्टी के प्रकार के अनुसार एग्रोटेक्सटाइल्स का चयन करना आवश्यक है ताकि अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके।

निष्कर्षः

स्मार्ट एग्रो टेक्सटाइल्स खरीफ फसलों की सुरक्षा के लिए एक आधुनिक, प्रभावी और सतत समाधान हैं। यह तकनीक उत्पादन बढ़ाने के साथ–साथ जल, मिट्टी और अन्य

संसाधनों के कुशल उपयोग तथा पर्यावरण संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शेडनेट, मल्चिंग और कीट–रोधी जाल फसल के लिए अनुकूल वातावरण बनाकर उसकी वृद्धि और गुणवत्ता में सुधार करते हैं। बदलते जलवायु परिदृश्य में इनका महत्व और बढ़ जाता है, क्योंकि ये फसलों को प्रतिकूल परिस्थितियों से बचाकर उत्पादन को स्थिर बनाए रखते हैं। इसके अतिरिक्त, इनका उपयोग लागत को नियंत्रित करने, जोखिम को कम करने और दीर्घकालीन लाभ सुनिश्चित करने में भी सहायक है। यह तकनीक छोटे और सीमांत किसानों के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है यदि इसे ही मार्ग दर्शन के साथ अपनाया जाए। साथ ही, यह कृषि को अधिक लाभकारी, सुरक्षित और पर्यावरण–अनुकूल बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। इस प्रकार, स्मार्ट एग्रोटेक्सटाइल्स भविष्य की टिकाऊ और जलवायु–सहिष्णु कृषि प्रणाली के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

फसल सुरक्षा हेतु कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए.आई.) की भूमिका

डॉ. उत्कर्ष उपाध्याय[1], सुमित कुमार शुक्ल[2], डॉ. शिवानन्द पाण्डेय[1], डॉ. जीतेन्द्र ओझा[1], डॉ. अभिषेक तिवारी,[1] डॉ. हिमांशु त्रिवेदी[3] एवं डॉ. दीपांजलि बाग[1]

[2]शोध छात्र, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर
[1]सहायक आचार्य, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर
[3]सह आचार्य, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ लगभग 55 प्रतिशत आबादी आजीविका के लिए कृषि एवं उससे जुड़ी गतिविधियों पर निर्भर करती है। कृषि अनाज, फल एवं सब्जी उत्पादन के साथ ही साथ पशुपालन व अन्य कारणों से ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ भी है। बढ़ती जनसंख्या, अप्रत्याशित जलवायु परिवर्तन, भूमि की घटती हुई उर्वरा शक्ति तथा रोग एवं कीटों के बढ़ते प्रकोप के कारण कृषि क्षेत्र अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। कृषि युक्त जमीन कम होती जा रही है तथा लोग बढ़ाते जा रहे है इन परिस्थितियों में फसल सुरक्षा किसानों के लिए सबसे महत्वपूर्ण तथा चुनौतीपूर्ण विषय बन गई है। यदि फसल को रोगों, कीटों और प्रतिकूल मौसम से नहीं बचाया गया तो उत्पादन और किसानों की आय दोनों प्रभावित होंगी।

पारंपरिक कृषि पद्धतियों में किसान रोगों और कीटों को पहचानने में अक्सर देर कर देता है, जिसके कारण फसल का उत्पादन कम हो जाता है तथा किसान को भारी नुकसान उठाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, पहचान होने के बाद रासायनिक कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग पर्यावरण, मिट्टी और मानव स्वास्थ्य पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है। इन परिस्थितियों से निपटने में आधुनिक तकनीकों का उपयोग अति आवश्यक हो गया है। इसी क्रम में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) कृषि क्षेत्र में एक प्रभावी और क्रांतिकारी तकनीक के रूप में उभरकर सामने आई है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता एक ऐसी तकनीक है जो मशीनों और कंप्यूटरों को डाटा के माध्यम से मानव की तरह सोचने और निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता को समस्याओं के पहचान एवं समाधान हेतु डेटा विश्लेषण की आवश्यकता होती है। वर्तमान समय में AI का उपयोग स्वास्थ्य, शिक्षा, उद्योग, बैंकिंग, अनुसंधान, नवाचार, अंतरिक्ष विज्ञान और परिवहन जैसे अनेक क्षेत्रों में हो रहा है। अब कृषि क्षेत्र भी कृत्रिम बुद्धि मत्ता से युक्त वैज्ञानिक तकनीक का तेजी से उपयोग हो रहा है।

फसल सुरक्षा के क्षेत्र में AI की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह तकनीक रोग एवं कीटों की प्रारंभिक अवस्था में ही पहचान कर लेती है, मौसम आधारित पूर्व चेतावनी देती है, स्मार्ट स्प्रेइंग करती है, जैविक नियंत्रण करती है तथा फसल क्षति के मूल्यांकन व अवलोकन में किसानों की सहायता करती है। AI आधारित मोबाइल ऐप, सेंसर, ड्रोन, रोबोट और उपग्रह चित्र किसानों को सही समय पर जरुरी निर्णय लेने में मदद करते हैं। इससे खेती अधिक वैज्ञानिक, सटीक और टिकाऊ बनती जा रही है।

AI केवल एक तकनीकी साधन ही नहीं अपितु किसानों के लिए "स्मार्ट सहायक" के रूप में कार्य कर रही है। यह किसानों को समय, श्रम और लागत की बचत के साथ ही मृदा का बेहतर स्वास्थ्य बनाये रखते हुए उत्पादन प्राप्त करने में भी सहायता पहुंचा रही है। यदि AI तकनीक का सही तरीके से उपयोग किया जाए, तो यह भारतीय कृषि को अधिक सुरक्षित, उत्पादक और लाभकारी बना सकती है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का अर्थ और कृषि में महत्वरू

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) एक आधुनिक तकनीक है, जिसके माध्यम से कंप्यूटर और मशीनें मानव जैसी सोच और निर्णय क्षमता का प्रदर्शन करती हैं। यह तकनीक डेटा को इकट्ठा कर उसका विश्लेषण करती है और उसी आधार पर किसानों को बेहतर निर्णय लेने में मदद करती है। पहले किसान खेती से जुड़े फैसले अपने अनुभव और परंपरागत ज्ञान पर आधारित करते थे। लेकिन बदलते मौसम और नई चुनौतियों के कारण अब केवल पारंपरिक ज्ञान पर्याप्त नहीं है। AI किसानों को मौसम, मिट्टी, फसल, रोग और कीटों से जुड़ी सटीक जानकारी उपलब्ध कराती है, जिससे वे वैज्ञानिक और आधुनिक तरीके से खेती कर पाते हैं। AI तकनीक के प्रयोग से खेती अधिक सटीक, टिकाऊ और लाभकारी बन रही है। यह कम संसाधनों में

अधिक उत्पादन प्राप्त करने में सहायक है।

फसल सुरक्षा में AI की भूमिका:

रोग और कीट पहचान:

AI आधारित इमेज प्रोसेसिंग पौधों की पत्तियों, तनों और फलों की तस्वीरों का विश्लेषण कर रोग और कीटों की पहचान करती है। किसान मोबाइल से फोटो लेकर ऐप में अपलोड करते हैं और कुछ ही सेकंड में परिणाम प्राप्त कर लेते हैं। शुरुआती स्तर पर पहचान होने से नुकसान कम होता है और उत्पादन सुरक्षित रहता है।

पूर्व चेतावनी प्रणाली:

AI मौसम, तापमान, नमी और मिट्टी के डेटा का विश्लेषण कर संभावित रोग या कीट प्रकोप की पहले से चेतावनी देती है। इससे किसान समय रहते तैयारी कर सकते हैं और रोग फैलने से पहले नियंत्रण संभव हो जाता है।

स्मार्ट स्प्रेइंग:

AI संचालित ड्रोन और रोबोट केवल प्रभावित हिस्सों पर ही कीटनाशक छिड़कते हैं। इससे लागत घटती है, पर्यावरण प्रदूषण कम होता है और लाभकारी कीट सुरक्षित रहते हैं।

जैविक नियंत्रण को बढ़ावा:

AI लाभकारी कीटों की निगरानी, फेरोमोन ट्रैप की प्रभावशीलता और जैविक कीटनाशकों के सही उपयोग की सलाह देकर रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम करती है।

ड्रोन और उपग्रह तकनीक:

AI आधारित ड्रोन और सैटेलाइट खेतों की निगरानी कर पौधों की वृद्धि, पोषण की कमी और सिंचाई की आवश्यकता का आकलन करते हैं। यह बड़े खेतों में विशेष रूप से उपयोगी है।

फसल क्षति और बीमा मूल्यांकन:

AI ड्रोन और उपग्रह चित्रों से फसल क्षति का सटीक आकलन करती है, जिससे बीमा कंपनियों को सही जानकारी मिलती है और किसानों को समय पर सहायता प्राप्त होती है।

कृषि में AI के लाभ:

- उत्पादन में वृद्धि
- लागत में कमी
- समय की बचत
- पर्यावरण संरक्षण
- बेहतर निर्णय क्षमता

चुनौतियाँ'

- ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी जानकारी का अभाव
- इंटरनेट और बिजली की सीमित उपलब्धता
- उपकरणों की ऊँची लागत
- स्थानीय भाषाओं में प्लेटफॉर्म की कमी
- किसानों को प्रशिक्षण की आवश्यकता

भविष्य की संभावनाएँ:

AI को सफल बनाने के लिए आवश्यक कदम:

- किसानों को डिजिटल प्रशिक्षण देना
- उपकरणों को सस्ता और सुलभ बनाना
- स्थानीय भाषाओं में ऐप विकसित करना
- अनुसंधान को बढ़ावा देना
- सरकार और निजी संस्थाओं का सहयोग
- ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल ढाँचा मजबूत करना

निष्कर्ष:

कृषि क्षेत्र में AI एक नई क्रांति का आधार है। यह रोग और कीट पहचान, पूर्व चेतावनी, स्मार्ट स्प्रेइंग, जैविक नियंत्रण और बीमा मूल्यांकन में किसानों की मदद कर रही है। इससे खेती अधिक वैज्ञानिक, टिकाऊ और लाभकारी बन रही है। चुनौतियाँ मौजूद हैं, लेकिन प्रशिक्षण, सहयोग और जागरूकता से इन्हें दूर किया जा सकता है। भविष्य में AI भारतीय कृषि को आधुनिक और सुरक्षित बनाने में अहम भूमिका निभाएगी और किसानों के जीवन में सकारात्मक बदलाव लाएगी।

जैविक खेती के प्रमुख अवयव और प्रयोग विधि

डॉ. नौशाद आलम[1], डॉ. पृथ्वी पाल[1], डॉ. विनोद प्रकाश[2] एवं डॉ. ओमकार सिंह यादव[1]

[1]वैज्ञानिक एवं [2]प्रभारी अधिकारी, कृषि विज्ञान केन्द्र, फिरोजाबाद

जैविक खेती एक महत्वपूर्ण खाद्य उत्पादन प्रबन्धन तन्त्र है जो कृषि जैव तन्त्र के स्वास्थ्य के साथ ही साथ जैव विविधता, जैविक चक्र एवं भूमि जैविक क्रियाओं में सहायक है। जैविक खेती एक पर्यावरण अनुकूल, समाज में स्वीकृत, आर्थिक रूप से सम्पन्न, मानव उपभोग के लिए गुणवत्तापूर्ण खाद्यान्न, रेशा, लकड़ी आदि के उत्पादन एवं पशुपालन की पद्धति है। इस विधि से उपयुक्त मात्रा में गुणवत्तायुक्त फसलोत्पादन के लिए वनस्पतियों के प्राकृतिक गुण, भूमि की दशा, पौधों के स्वभाविक प्राकृतिक गुण व स्थानीय जीव जन्तुओं के मध्य सामंजस्य रखते हुए खेती की जाती है।

हरी खादः

दलहनी फसलों को खेत में उगाकर उनको कोमल अवस्था में जुताई करके दबा दिया जाता है, जो सड़ गलकर पर्याप्त मात्रा में कार्बनिक पदार्थ व पोषक तत्व पौधों को उपलब्ध कराते हैं, इस प्रकार की खाद हरी खाद कहलाती है। हरी खाद के उपयोग से भूमि की उर्वराशक्ति कार्बनिक पदार्थों में वृद्धि, भूमि की संरचना तथा जलधारण क्षमता में सुधार होता है।

नाडेप कम्पोस्टः

नाडेप कम्पोस्ट कम गोबर से अधिक मात्रा में जैविक खाद बनाने की एक सर्वोत्तम विधि है। इस विधि से एक गाय/भैंस से 80–100 टन खाद बनाई जा सकती है, जिसकी कीमत लगभग 40,000 रूपये होती है। यह एक विशिष्ट प्रकार से बने गड्ढे में तैयार की जाती है।

नाडेप कम्पोस्ट गड्ढे की भराइः

पहली परत वानस्पतिक अवशेष की 6 इंच मोटी।

दूसरी परत 4 किग्रा गोबर 125–150 लीटर पानी में घोलकर छिड़कें।

तीसरी परत 50–60 किग्रा मिट्टी बराबर बिछायें।

इस प्रकार 11–12 तहों में गड्ढा भरकर ऊपर से 3 इंच मिट्टी की डालकर लीप दें।

वर्मी कम्पोस्टः

बेकार कार्बनिक पदार्थ जैसे पशुओं का गोबर, फसल अवशेष, खरपतवार, जलकुम्भी, सब्जियों के छिलके, घरेलू एवं शहरी कचरा आदि जो आसानी से सड़ने योग्य हो, केचुओं द्वारा खाकर मल के रूप में निकला पदार्थ वर्मी कम्पोस्ट या केंचुआ खाद कहलाती है।

वर्मी कम्पोस्ट गड्ढा निर्माणः

गड्ढा जमीन से थोड़ा ऊँचा बनायें जिससे उसमें पानी न भरे। गड्ढे में नीचे कंकड़/पत्थर की मोटी परत विछाकर ऊपर से 4–6 सेमी बालू की परत बिछायें तथा केचुओं को धूप व वर्षात से बचाव के लिए ऊपर छप्पर अवश्य डालना चाहिए।

वर्मी कम्पोस्ट गड्ढे की भराईः

- पहली परत उपजाऊ मिट्टी की 1 इंच मोटी।
- दूसरी परत अधसड़ी गोबर डालकर एक किग्रा केचुआ छोड़ दें।

फसल	बीज की मात्रा किग्रा/हे.	हरे पदार्थ की मात्रा टन/हे.	पोशक तत्वों का प्रतिशत		
			नत्रजन	फास्फोरस	पोटाश
1. सनई	50–60	18–28	0.75	0.12	0.51
2. ढैंचा	50–60	20–25	0.62	0.12	0.50
3. लोबिया	40–45	15–18	0.71	0.15	0.50
4. उड़द/मूँग	20–22	10–12	0.85	0.16	0.53
5. ग्वार	30–40	20–25	0.34	–	–

- तीसरी परत 5–10 सेमी 50–60 प्रतिशत नमी वाला कार्बनिक पदार्थ बिछायें।
- 20–25 दिन बाद प्रति सप्ताह इसी तरह 5–10 सेमी कार्बनिक पदार्थ बिछायें जब तक गड्ढा भर न जायें।
- 6–7 सप्ताह में वर्मी कम्पोस्ट बनकर तैयार हो जाती है।
- इस प्रकार वर्मी कम्पोस्ट गर्मियों में 85–90 दिन में तथा सर्दियों में 110–120 दिनों में तैयार हो जाती है।

जैव उर्वरकः

राइजोबियम कल्चरः

राइजोबियम कल्चर मुख्य रूप से दलहनी फसलों में प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक दलहनी फसल जैसे चना, मटर, मसूर, सोयाबीन, मूंगफली, अरहर, उर्द, मूंग, लोबिया, बरसीम, रिजका, ढैंचा एवं सनई के लिए अनुमोदित कल्चर ही प्रयोग करना चाहिए।

प्रयोग विधिः

राइजोबियम कल्चर से बीजोपचार के लिए 200 ग्राम पैकेट से 10–12 किग्रा बीज उपचारित करना चाहिए। इसके लिए 300–400 मिली पानी में कल्चर घोलकर बीज में अच्छी तरह मिलाकर छाया में सुखाकर शाम के समय बुवाई करें। इसके प्रयोग से 50–100 किग्रा/हे. नत्रजन प्राप्त होती है तथा उत्पादन में 10–70 प्रतिशत तक वृद्धि होती है।

एजोटोबैक्टर कल्चरः

एजोटोबैक्टर कल्चर का प्रयोग गेहूँ, धान, मक्का, जौ, टमाटर, कपास, सूरजमुखी, सरसों आदि के लिए अनुमोदित किया जाता है। एजोटोबैक्टर वायुमंडलीय नत्रजन का मृदा में स्थिरीकरण का कार्य करता है। इसके प्रयोग से बीजों का जमाव तथा जड़ों का विकास अच्छा होता है। एजोटोबैक्टर अपनी जैविक क्रियाओं के दौरान विटामिन बी समूह के जिब्रेलिक एसिड व इण्डोल एसिटिक एसिड जैसे वृद्धि नियामकों का भी संश्लेषण करके बीजों के अंकुरण व पौधों की वृद्धि में सहायक है। इसके प्रयोग से प्याज, टमाटर, बैंगन, बन्दगोभी, आलू इत्यादि फसलों के उत्पादन में 15–30 प्रतिशत की बृद्धि होती है।

प्रयोग विधिः

एजोटोबैक्टर कल्चर के 200 ग्राम/किग्रा की दर से बीजोपचार करना चाहिए। पौध, कन्द उपचार के लिए 1.5–2.0 किग्रा प्रति एकड़ की दर से 6–8 लीटर पानी में कल्चर घोलकर जड़ों व कन्द को डुबोकर रोपना या बोना चाहिए। मृदा उपचार के लिए 3.5 किग्रा कल्चर 30–50 किग्रा सड़ी गोबर की खाद में मिलाकर मिट्टी में मिलायें। इसके प्रयोग से 15–20 किग्रा/हे. नत्रजन की बचत तथा 10–20 प्रतिशत तक उत्पादन में वृद्धि होती है।

एजोस्पाइरिलम कल्चरः

एजोस्पाइरिलम कल्चर को मोटे अनाज वाली फसलों जैसे ज्वार, बाजरा, रागी, जई, सावां, कोदो, काकुन के लिए अनुमोदित किया जाता है। यह सब्जी फसलों की जड़ों के विकास व उन्हें नत्रजन उपलब्ध कराने वाला सहयोगी जीवांणु है।

विभिन्न चारे वाली फसलों पर भी एजोस्पाइरिलम कल्चर का प्रभाव अच्छा होता है। इसके प्रयोग से मिलेट्स के दाना एवं चारा उत्पादन में वृद्धि तथा 15–20 किग्रा/हे. नत्रजन की बचत होती है।

फास्फेटिकाः

इसका प्रयोग सभी फसलों में किया जाता है। 200 ग्राम से एक किग्रा प्रति एकड़ की दर से बीजोपचार करना चाहिए। पौध व कन्द उपचार के लिए 1.5–2.0 किग्रा प्रति एकड़ की दर से 6–8 लीटर पानी में कल्चर घोलकर जड़ों व कन्द को डुबोकर रोपना या बोना चाहिए। मृदा उपचार के लिए 3.5 किग्रा कल्चर 30–50 किग्रा सड़ी गोबर की खाद में मिलाकर मिट्टी में मिलायें। इसके प्रयोग से अघुलनशील

विभिन्न फसलों के लिए वर्मी कम्पोस्ट की मात्राः (50 प्रतिशत नमी युक्त टन/हे.)

फसल	जैविक	अजैविक
मोटे अनाज (मडुआ, जौ, साँवा, ज्वार, बाजरा आदि)	15–20	05
घान्य फसलें (धान, गेहूँ, मक्का)	30–35	10–15
दलहनी फसलें (चना, मटर, मसूर, सोयाबीन, उड़द मूंग)	15–20	05–10
सब्जियाँ (फ्रांस बीन, भिण्डी, मटर, टमाटर, बैंगन, मिर्च)	30–40	15–20

फास्फोरस पौधों को उपलब्ध होता है। 30–40 प्रतिशत फास्फोरस की बचत तथा 10–20 प्रतिशत तक उत्पादन में वृद्धि होती है।

नील हरित शैवालः

इसका प्रयोग धान की फसल में रोपाई के 3–4 दिन बाद स्थिर पानी में 12.5 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से सूखे जैव उर्वरक का प्रयोग करना चाहिए। प्रयोग के बाद 4–5 दिनों तक खेत में पानी भरा रहना चाहिए। इससे 30 किग्रा नत्रजन की बचत तथा 15–20 प्रतिशत तक उत्पादन में वृद्धि होती है।

एजोला काईः

इसकी पत्तियों की निचली सतह पर साइनोबैक्टीरिया पाया जाता है जो नाइट्रोजन स्थिरीकरण का कार्य करता है। इसका प्रयोग धान की फसल में रोपाई के एक सप्ताह बाद स्थिर पानी में 10 कुन्तल प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। इसके प्रयोग से धान की फसल में 40–80 किग्रा नत्रजन की बचत होती है तथा खरपतवार की समस्या भी कम होती है।

माइकोराइजाः

इसके कवक तन्तु पौधे व मृदा के बीच पुल का निर्माण करते हैं इसके प्रयोग से नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्सियम, जस्ता, लोहा, तांबा, कोबाल्ट, मैग्नीशियम, मोलिब्डिनम आदि की उपलब्धता बढ़ती है। पौधों को वृद्धि हारमोन्स भी उपलब्ध होते हैं तथा भूमि जनित जीवाणुओं/फफूँदों को नष्ट करता है। जिससे सूत्रकृमि व रोगजनक कवकों द्वारा होने वाली हानि कम होती है।

प्रयोग विधिः

इसका प्रयोग मुख्य रूप से शाकभाजी, बागवानी, गन्ना आदि फसलों में किया जाता है। इसको 5 किग्रा प्रति एकड़ की दर से 1:20 अनुपात में गोबर की खाद, कम्पोस्ट या केंचुए की खाद में मिलाकर पौधों के जड़ क्षेत्र में प्रयोग करना चाहिए। बागों में 200–250 ग्राम प्रति पौधे की दर से जुलाई–अगस्त एवं फरवरी–मार्च में पौधे के चारों ओर देना चाहिए। नर्सरी में 10 ग्राम प्रति किग्रा गोबर, मिट्टी, बालू बराबर के मिश्रण से थैलियों में भरकर बीज की बुवाई करके किया जाता है।

फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (पी.एस.बी.) कल्चर एकः लाभ अनेक

डॉ. विनोद प्रकाश[1], प्रो. विवेक कुमार त्रिपाठी[2] एवं डॉ. भूपेन्द्र कुमार सिंह[3]

[1]प्रभारी अधिकारी, कृषि विज्ञान केंद्र, फिरोजाबाद
[2]निदेशक प्रसार एवं अधिष्ठाता, उद्यान संकाय
[3]प्रभारी अधिकारी, कृषि विज्ञान केंद्र, फर्रुखाबाद
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (पी.एस.बी.) एक जैव उर्वरक है, जिसमें ऐसे लाभकारी सूक्ष्मजीव होते हैं, जो मिट्टी में उपस्थित अघुलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील बनाकर पौधों के लिए उपलब्ध कराते हैं। फॉस्फोरस पौधों की वृद्धि, जड़ विकास, ऊर्जा स्थानांतरण (ATP), पुष्पन, फलन तथा बीज निर्माण के लिए अत्यंत आवश्यक पोषक तत्व है। यद्यपि अधिकांश मृदा में फॉस्फोरस पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है, परंतु उसका बड़ा भाग कैल्शियम, आयरन एवं एल्युमिनियम के साथ बंधा होने के कारण पौधों के लिए अनुपलब्ध रहता है।

फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु क्या है?

पौधे मुख्यतः उसी फॉस्फोरस का अवशोषण कर पाते हैं जो उनकी जड़ों के निकट (जड़ क्षेत्र या राइजोस्पीयर) में उपलब्ध होता है, क्योंकि मिट्टी में फॉस्फोरस की गतिशीलता बहुत कम होती है। परिणामस्वरूप, उर्वरकों द्वारा दिया गया या मिट्टी में उपस्थित फॉस्फोरस समय के साथ कैल्शियम, आयरन एवं एल्युमिनियम के यौगिकों के साथ अभिक्रिया करके कम घुलनशील अथवा अघुलनशील रूपों में परिवर्तित हो जाता है। मिट्टी में फॉस्फोरस की काफी मात्रा मौजूद होती है, लेकिन उसका अधिकांश भाग पौधों के लिए उपलब्ध नहीं होता। पी.एस.बी. जीवाणु जैविक अम्ल (Organic Acid) बनाकर इस फॉस्फोरस को घुलनशील बनाते हैं।

प्रमुख फॉस्फेट घुलनशील जीवाणः

- *Bacillus megaterium*
- *Pseudomonas striata*
- *Bacillus polymyua*
- *Aspergillus awamori* (फफूंद)

फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु का पौधों में कार्य करने की प्रक्रियाः

- विभिन्न कार्बनिक अम्लों जैसे साइट्रिक अम्ल, ग्लूकोनिक अम्ल, ऑक्सैलिक अम्ल, लैक्टिक अम्ल आदि का उत्पादन करते हैं।
- कार्बनिक अम्लों के प्रभाव से जड़ क्षेत्र (राइजोस्पीयर) में पी.एच. को कम करते हैं।
- मिट्टी में उपस्थित अघुलनशील फॉस्फेट यौगिकों को घुलनशील बनाकर पौधों के लिए उपलब्ध कराते हैं।
- पीएसबी जीवाणु पौधों की जड़ों के आसपास (राइजोस्फीयर) में अपनी आबादी स्थापित कर वहाँ निरंतर वृद्धि करते हैं तथा फॉस्फोरस को घुलनशील बनाकर पौधों को उपलब्ध कराते हैं।
- जड़ों की वृद्धि एवं विकास को प्रोत्साहित करते हैं, जिससे पोषक तत्वों और जल का अवशोषण बढ़ता है।
- क्षारीय एवं चूना युक्त मिट्टियों में फॉस्फोरस प्रायः कैल्सियम फॉस्फेट के रूप में बंधकर स्थिर रहता है। फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु विभिन्न कार्बनिक अम्ल बनाते हैं, जो मिट्टी का पी.एच. कम करते हैं। कैल्सियम फॉस्फेट को तोड़कर फॉस्फोरस को घुलनशील बनाते हैं। इस प्रक्रिया में कुछ मात्रा में कैल्शियम आयन भी मुक्त हो सकते हैं।
- कई पी.एस.बी. और अन्य लाभकारी जीवाणु साइडेरोफोर बनाते हैं, जो आयरन को बांधकर पौधों के लिए अधिक उपलब्ध बनाने में सहायता करते हैं।
- ये जीवाणु फॉस्फेटेज एवं फाइटेज जैसे एंजाइम भी उत्पन्न करते हैं, जो मिट्टी में उपस्थित कार्बनिक फॉस्फोरस को तोड़ते हैं और उसे अकार्बनिक ऑर्थोफॉस्फेट ($H_2PO_4^-$] HPO_4^{2-}) जैसे पौधों द्वारा अवशोषित किए जाने वाले रूपों में परिवर्तित कर देते हैं। साधारण भाषा में कार्बनिक फॉस्फोरस को अकार्बनिक

फॉस्फोरस में बदलकर उसे पौधों के लिए उपलब्ध बनाते हैं। उपलब्ध फॉस्फोरस की मात्रा बढ़ने से जड़ विकास, ऊर्जा स्थानांतरण (ATP), प्रकाश संश्लेषण, पुष्पन, फलन तथा दाना निर्माण में सुधार होता है।

- कुछ फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु ऑक्सिन (IAA), जिबरेलिन तथा साइटोकाइनिन जैसे वृद्धि हार्मोन भी उत्पन्न करते हैं, जिससे जड़ों का विकास बढ़ता है और पौधे अधिक मात्रा में जल एवं पोषक तत्वों का अवशोषण कर पाते हैं।
- फॉस्फोरस के साथ–साथ जिंक, आयरन एवं अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने में भी सहायक हो सकते हैं।

पौधों पर प्रभावः

- जड़ों की लंबाई एवं फैलाव में वृद्धि होती है।
- अंकुरण एवं प्रारंभिक वृद्धि बेहतर होती है।
- फॉस्फोरस अवशोषण क्षमता बढ़ती है।
- पौधों में ऊर्जा उत्पादन एवं चयापचय क्रियाएं तेज होती हैं।
- पुष्पन एवं फलन में सुधार होता है।
- दानों का भराव एवं गुणवत्ता बेहतर होती है।
- सूखा एवं अन्य प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता बढ़ सकती है।
- डी.ए.पी. एवं एस.एस.पी. आदि उर्वरकों की दक्षता 20 से 25 प्रतिशत तक बढ़ सकती है।
- 20 से 30 प्रतिशत तक फॉस्फेट उर्वरक की बचत संभव।
- उपज एवं गुणवत्ता में वृद्धि।
- मिट्टी की जैविक सक्रियता बढ़ती है।
- पर्यावरण अनुकूल जैव उर्वरक।

पर्यावरण के प्रति अनुकूलः

पी.एस.बी. एक प्राकृतिक जैव उर्वरक है, इसलिए यह पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता। यह मिट्टी में पहले से उपलब्ध फॉस्फोरस को उपयोगी बनाता है, जिससे रासायनिक फॉस्फेट उर्वरकों की आवश्यकता कम हो सकती है। इसके उपयोग से मृदा की जैविक सक्रियता बढ़ती है, लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या में वृद्धि होती है तथा दीर्घकाल में मृदा स्वास्थ्य बेहतर बना रहता है। साथ ही फॉस्फेट उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से होने वाले जल प्रदूषण की संभावना भी कम होती है।

प्रयोग विधिः

बीज उपचारः

बुवाई से पूर्व 20–25 ग्राम फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (पी.एस.बी.) कल्चर या 10–20 मि.ली. तरल पी.एस.बी. प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित किया जाता है। बीजों पर गुड़ या शक्कर के घोल की सहायता से कल्चर का समान लेप किया जाता है तथा छाया में सुखाकर बुवाई की जाती है।

भूमि उपचारः

4–5 किलोग्राम फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (पी.एस.बी.) कल्चर को 50–100 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट में मिलाकर प्रति हेक्टेयर अंतिम जुताई के समय खेत में समान रूप से बिखेर दिया जाता है।

जड़ उपचारः

धान, सब्जियों एवं अन्य रोपाई वाली फसलों में 1–2 किलोग्राम फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (पी.एस.बी.) को 20–25 लीटर पानी में घोलकर पौधों की जड़ों को 20–30 मिनट तक डुबोया जाता है, तत्पश्चात रोपाई की जाती है।

बीज अंकुरण के बादः

- जीवाणु जड़ों के आसपास बसते हैं।
- पौधों की जड़ों से निकलने वाले स्राव (शर्करा, अमीनो अम्ल) का उपयोग करते हैं।
- तेजी से वृद्धि करते हैं।
- फॉस्फेट घुलनशील बनाते हैं।
- जड़ों की सतह पर जैव फिल्म (Biofilm) बनाते हैं।

किन फसलों में उपयोगीः

फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (पी.एस.बी.) कल्चर का प्रयोग सभी फसलों जैसे तिलहनी, दलहनी, अनाज एवं सब्जियों में लाभकारी होता है।

फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (पी.एस.बी.) कल्चर की सीमाएंः

- अत्यधिक अम्लीय या क्षारीय मिट्टी में प्रभाव कम।
- सूखी मिट्टी में जीवाणु सक्रियता घटती है।
- अत्यधिक रासायनिक कीटनाशकों से संख्या कम हो सकती है।
- जैविक पदार्थ कम होने पर प्रभाव सीमित हो सकता है।

प्रयोग के समय सावधानियाँ :

- फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (पी. एस.बी.) कल्चर के पैकेट पर अंकित समाप्ति तिथि (Expiry Date) अवश्य देखें।
- फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (पी.एस.बी.) कल्चर को हमेशा छायादार स्थान पर रखें।
- कल्चर को रासायनिक फफूंदनाशकों के साथ सीधे न मिलाएँ।
- बीज उपचार में पहले फफूंदनाशी, फिर 24 घंटे बाद ही फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (पी.एस.बी.) कल्चर लगाएँ।
- तेज धूप में प्रयोग न करें।

फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (पी.एस.बी.) कल्चर की गुणवत्ता मानकः Bureau of Indian Standards के अनुसारः

- जीवित कोशिकाएँ ≥ 10^7–10^8 CFU/ग्राम या मिली
- पी.एचः 6.5–7.5
- अशुद्धिः नगण्य
- शेल्फ लाइफः 6–12 माह

बलरामपुर जिले के वनवासी (जनजाति) किसानों का उद्यमिता पूर्ण व्यवहारः एक व्यापक विश्लेषण

सुमित कुमार शुक्ल[1], डॉ. रोहित[1], डॉ. हरिश्चंद्र सिंह[2], डॉ. जितेंद्र ओझा[1], विकास मौर्य[1] एवं डॉ. हिमांशु त्रिवेदी[1]

[1]छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर, उत्तर प्रदेश
[2]कृषि प्रसार विभाग, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

'जनजाति' समान नाम धारण करने वाले परिवारों का एक संकलन है, जो समान बोली बोलते हों तथा एक ही भूखण्ड पर अधिकार करने का दावा करते हों अथवा दखल रखते हों जो साधारणतया अन्तर्विवाही न हों यद्यपि मूल रूप में चाहे वैसे रह रहे हों। – इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया

"एक ऐसा सामाजिक समूह जिसका क्षेत्रीय संबंध होता है, अंतर्विवाही होता है, कार्यों का कोई विशिष्टीकरण नहीं होता, जनजातीय अधिकारियों द्वारा शासित होता है, चाहे वे वंशानुगत हों या नहीं, भाषा या बोली में एकजुट होता है, अन्य जनजातियों या जातियों से सामाजिक दूरी बनाए रखता है, जाति संरचना की तरह किसी भी सामाजिक कलंक से मुक्त होता है, जनजातीय परंपराओं, मान्यताओं और रीति–रिवाजों का पालन करता है, बाहरी स्रोतों से विचारों के प्राकृतिककरण के प्रति उदार नहीं होता है, और सबसे बढ़कर जातीय और क्षेत्रीय एकीकरण की समरूपता के प्रति सचेत होता है।" मजूमदार डी. एन. (1950)

"एक निश्चित क्षेत्र, सामान्य नाम, सामान्य जिला, सामान्य संस्कृति, अंतर्विवाही समूह का व्यवहार, सामान्य वर्जनाएं, विशिष्ट सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था का अस्तित्व, नेताओं में पूर्ण विश्वास और अपनी विशिष्ट अर्थव्यवस्था में आत्मनिर्भरता वाला सामाजिक समूह।" विद्यार्थी एल. पी. (1981)

भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 342** के तहत ''अनुसूचित जनजातियों'' को परिभाषित किया गया है। इसके अनुसार, वे समुदाय जिन्हें राष्ट्रपति द्वारा सार्वजनिक अधिसूचना के माध्यम से इस श्रेणी में शामिल किया गया है, अनुसूचित जनजाति कहलाते हैं। इन्हें अक्सर 'आदिवासी' के नाम से भी संबोधित किया जाता है।

भारत में आदिवासी मुख्य रूप से मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, राजस्थान झारखंड और पूर्वोत्तर के राज्यों में निवास करते हैं। साथ ही बिहार, पश्चिम बंगाल. गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश में आदिवासी समुदाय के लोग निवास करते हैं। भारत के प्रमुख आदिवासी समुदाय भील, गोंड, आंध, खरवार, बोडो, कोल, मुण्डा, खड़िया, कोली, सहरिया, संथाल, बिरहोर, पारधी, असुर, नायक, भिलाला, मीना, टाकणकार, भूमिज, उरांव, लोहरा, आदि हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, अनुसूचित जनजाति भारत की जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत है। ग्रामीण क्षेत्रों में जनजातीय आबादी का 11.3 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में जनजातीय आबादी का केवल 2.8 प्रतिशत हिस्सा है।

भारत के सबसे अधिक आबादी वाले राज्य उत्तर प्रदेश में, जनजातीय (आदिवासी) समुदाय मुख्य रूप से सोनभद्र, ललितपुर, लखीमपुर खीरी, बलरामपुर और बहराइच जिलों में निवास करते हैं। गोंड, खरवार, चेरो, बैगा एवं थारु जैसी प्रमुख जनजातियाँ ऐतिहासिक रूप से खेती और वन उत्पादों पर निर्भर रही हैं। परंपरागत रूप से निर्वाह खेती करने वाले ये किसान, वर्तमान समय में आर्थिक आवश्यकताओं और नीतिगत सहयोग के कारण 'उद्यमिता पूर्ण व्यवहार' की ओर बढ़ रहे हैं।

उत्तर प्रदेश के तराई जिले लखीमपुर खीरी, बलरामपुर, बहराइच, श्रावस्ती, महराजगंज जिलों में मुख्य रूप से बुक्सा, थारू, माहगीर, शोर्का, खरवार, राजी, जॉनसारी **जनजाति** निवास करते हैं। इन किसानों के उद्यमितापूर्ण व्यवहार पर किए गए शोध और विश्लेषण दर्शाते हैं कि वे अब पारंपरिक जीवन निर्वाह खेती से ऊपर उठकर आधुनिक और वैज्ञानिक कृषि पद्धतियों की ओर बढ़ रहे हैं।

अध्ययन की आवश्यकता और महत्वः

बलरामपुर जिले में खेती केवल उत्पादन नहीं, बल्कि आजीविका का एक समग्र साधन है। चूँकि आदिवासी समाज अक्सर मुख्यधारा से कटा हुआ

होता है, इसलिए उनकी उद्यमशीलता की समझ सामान्य आबादी से भिन्न होती है। उत्तर प्रदेश में लगभग 80 प्रतिशत सीमांत किसान हैं और आदिवासियों की स्थिति और भी चुनौती पूर्ण है।

उद्यमिता पूर्ण व्यवहार के अध्ययन का महत्व इसलिए है क्योंकि–

- **आय में वृद्धिः** यह निर्वाह खेती से व्यावसायिक कृषि की ओर बदलाव को प्रोत्साहित करता है, जिससे आय बढ़ती है।
- **स्थिरताः** कमार जैसे जनजातीय समुदाय देशी बीजों और मिश्रित खेती के माध्यम से टिकाऊ कृषि अपना रहे हैं।
- **आत्मनिर्भरताः** वन धन योजना जैसी पहलों के माध्यम से, आदिवासी किसान अपने उत्पादों का मूल्यवर्धन कर रहे हैं।

आदिवासी किसानों में उद्यमिता के प्रमुख व्यवहारिक आयामः

शोध से पता चलता है कि उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्रों के आदिवासी किसानों में मध्यम स्तर का उद्यमशीलता व्यवहार विकसित हो रहा हैः

जैसे – बलरामपुर के आदिवासी किसानों के उद्यमिता के प्रमुख आयाम निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता हैः

नवाचार और वैज्ञानिक दृष्टिकोणः

थारू किसान पारंपरिक तरीकों के स्थान पर अब बेहतर कृषि–वैज्ञानिक पद्धतियों को अपना रहे हैं। वे मौसम पूर्वानुमान और आधुनिक कृषि तकनीक के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए कंप्यूटर लैब और मोबाइल तकनीक का उपयोग कर रहे हैं।

उद्यमिता का स्तरः

अध्ययन के अनुसार, बलरामपुर के लगभग 52.17 प्रतिशत आदिवासी किसानों में उद्यमितापूर्ण व्यवहार का स्तर 'तटस्थ' से 'अनुकूल' पाया गया है। हालांकि, उनकी निर्णय लेने की क्षमता और जोखिम उठाने की क्षमता मध्यम स्तर की है, जो प्रशिक्षण के साथ बढ़ रही है।

आजीविका विविधीकरणः

आदिवासी किसान अब केवल फसल उत्पादन पर निर्भर नहीं हैं। वे पशुपालन, मत्स्य पालन और दुग्ध उत्पादन जैसे क्षेत्रों में भी निवेश कर रहे हैं। बलरामपुर जिले में पशुपालन से प्राप्त आय अक्सर पारंपरिक खेती से अधिक लाभदायक सिद्ध हो रही है।

संगठनात्मक भागीदारीः

किसानों ने स्वयं सहायता समूहों और किसान उत्पादक संगठनों के माध्यम से संगठित होना शुरू किया है। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्रों में 'मसाला किसान उत्पादक कंपनियों' का गठन किया गया है, जो उन्हें बेहतर बाजार पहुंच प्रदान करती हैं ।

आर्थिक प्रेरणाः

अधिकांश किसानों में आर्थिक उन्नति की तीव्र आकांक्षा देखी गई है। अध्ययन बताते हैं कि लगभग 74.17 प्रतिशत किसान मध्यम से उच्च स्तर की आर्थिक प्रेरणा प्रदर्शित करते हैं।

नवाचारः

किसान अब पारंपरिक फसलों के साथ–साथ व्यावसायिक फसलों, औषधीय पौधों और सब्जी की खेती की ओर रुख कर रहे हैं।

जोखिम क्षमताः

कदाचित वे रूढ़िवादी किसान रहे हैं, लेकिन अब वे नई तकनीकों, जैसे ड्रिप सिंचाई और जैविक खेती में मध्यम स्तर का जोखिम ले रहे हैं।

प्रबंधन और निर्णय लेने की क्षमताः

स्वयं–सहायता समूहों के गठन के बाद, वे बेहतर निर्णय लेने और संसाधनों का प्रबंधन करने में सक्षम हो रहे हैं।

लक्ष्य प्रेरणाः आर्थिक स्वतंत्रता और बेहतर जीवन स्तर की चाह उन्हें उद्यमशीलता के लिए प्रेरित कर रही है।

उद्यमिता में आने वाली चुनौतियाँ और समाधानः

आदिवासी किसानों को अपने उद्यम के विस्तार में कुछ प्रमुख समस्याओं का सामना करना पड़ता हैः

पूँजी और ऋण का अभावः बैंक अक्सर उनकी अनिश्चित आय और सामाजिक स्थिति के कारण ऋण देने में संकोच करते हैं।

बाजार पहुंच और बुनियादी ढांचाः खराब सड़कें और बिचौलियों की उपस्थिति उनके लाभ को कम करती है।

शिक्षा और कौशलः शिक्षा के निम्न स्तर के कारण नई तकनीकों के पूर्ण उपयोग में बाधा आती है।

सरकारी प्रयास और होमस्टे योजनाः उत्तर प्रदेश सरकार ने इन जनजातीय क्षेत्रों में होमस्टे योजना शुरू की है, जो

कृषि के साथ–साथ पर्यटन के माध्यम से भी उद्यमिता को बढ़ावा दे रही है। इसके तहत, किसान पर्यटकों को अपनी संस्कृति और पारंपरिक भोजन का अनुभव कराते हैं, जिससे उनकी आय में वृद्धि होती है।

प्रमुख चुनौतियाँ उद्यमिता पूर्ण व्यवहार के बावजूद, आदिवासी किसानों को कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है जैसेः

- संसाधन और तकनीक का अभावः वित्तीय संसाधनों और आधुनिक कृषि उपकरणों की कमी।
- बाजार तक पहुंच, बिचौलियों पर निर्भरता और उचित विपणन का अभाव।
- शिक्षा और जागरूकता, प्रशिक्षण और सरकारी योजनाओं की जानकारी में कमी।

उपसंहारः

उत्तर प्रदेश के आदिवासी किसानों का उद्यमिता पूर्ण व्यवहार अभी विकासशील अवस्था में है। वे केवल परंपरागत वन उत्पाद संग्राहक नहीं, बल्कि अब सक्रिय कृषि उद्यमी के रूप में उभर रहे हैं। उपयुक्त सरकारी नीति, ट्राईफेड जैसे संस्थानों का सहयोग, और कौशल विकास के माध्यम से, इस व्यवहार को एक सफल उद्यम में बदला जा सकता है, जो न केवल उनकी आय में वृद्धि करेगा, बल्कि राज्य की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भी महत्वपूर्ण योगदान देगा।

एल–नीनो की चुनौती और उत्तर प्रदेश की कृषिः किसानों के लिए प्रबंधन एवं समाधान

डॉ. सौरभ राज पांडे, डॉ. राघवेंद्र सिंह, डॉ. अजय कुमार सिंह, डॉ. प्रीति यादव एवं डॉ. सीमा यादव

भाकृअनुप–अटारी, जोन–3, कानपुर, उत्तर प्रदेश

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ अधिकांश किसान वर्षा आधारित खेती पर निर्भर हैं। उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा कृषि राज्य है, जहाँ धान, गन्ना, गेहूँ, मक्का, बाजरा तथा दलहनी फसलें बड़े क्षेत्र में उगाई जाती हैं। बदलती जलवायु और मौसम की अनिश्चितता कृषि के लिए नई चुनौतियाँ उत्पन्न कर रही हैं। इनमें एल–नीनो (El Nino) एक महत्वपूर्ण वैश्विक जलवायु घटना है, जो मानसून को प्रभावित कर कृषि उत्पादन में कमी ला सकती है। एल–नीनो के प्रभाव से वर्षा कम हो जाती है, सूखे जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं तथा फसलों की वृद्धि एवं उत्पादन प्रभावित होता है। ऐसे समय में किसानों को वैज्ञानिक कृषि तकनीकों को अपनाकर अपनी फसलों को सुरक्षित रखना आवश्यक हो जाता है।

एल–नीनो क्या है?

एल–नीनो प्रशांत महासागर के भूमध्यरेखीय क्षेत्र में समुद्री सतह के तापमान में असामान्य वृद्धि की स्थिति है। इसका प्रभाव विश्व के अनेक देशों की जलवायु पर पड़ता है। भारत में एल–नीनो के दौरान सामान्यतः मानसूनी वर्षा कम हो जाती है, जिससे सूखे जैसी परिस्थितियाँ बन सकती हैं। कम वर्षा के कारण खेतों में नमी की कमी, भूजल स्तर में गिरावट तथा सिंचाई जल की उपलब्धता में कमी आती है। परिणामस्वरूप फसलों की वृद्धि प्रभावित होती है और उत्पादन घट सकता है।

उत्तर प्रदेश की कृषि पर प्रभावः

उत्तर प्रदेश में लगभग 66 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं उससे संबंधित गतिविधियों पर निर्भर है। राज्य में धान, गन्ना, बाजरा और मक्का प्रमुख खरीफ फसलें हैं। एल–नीनो के कारण यदि वर्षा में कमी आती है तो इन फसलों की बुवाई, वृद्धि तथा उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। विशेष रूप से धान जैसी अधिक पानी की आवश्यकता वाली फसलें सबसे अधिक प्रभावित होती हैं। इसलिए किसानों को जल संरक्षण, सूखा सहनशील किस्मों का चयन तथा वैज्ञानिक फसल प्रबंधन अपनाना चाहिए।

धान की खेती में अपनाए जाने वाले उपायः धान

धान उत्तर प्रदेश की प्रमुख खरीफ फसल है और एल–नीनो की स्थिति में इसके उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना रहती है। ऐसी परिस्थितियों में किसानों को सूखा सहनशील एवं कम अवधि वाली किस्मों जैसे नीडीआर–97, सुक्खा सम्राट, सहभागी धान, जल्दी धान–6, मालवीय मनीला सिंचित धान–1, डीडीआर धान–42 तथा एनडीआर–118 का चयन करना चाहिए, क्योंकि ये किस्में कम वर्षा एवं नमी तनाव की स्थिति में अपेक्षाकृत बेहतर प्रदर्शन करती हैं। जल की कमी की परिस्थितियों में प्रत्यक्ष बुवाई (डायरेक्ट सीडेड राइस), ड्रम सीडिंग तथा एसआरआई पद्धति को अपनाने से जल की बचत के साथ–साथ फसल की उत्पादकता बनाए रखने में सहायता मिलती है। विलंबित मानसून की स्थिति में समय पर रोपाई करते हुए प्रति स्थान 3–4 पौधों की रोपाई तथा उचित पौध संख्या बनाए रखना आवश्यक है। खेत में थिनिंग, गैप फिलिंग और खरपतवार नियंत्रण के माध्यम से पौधों की वांछित संख्या बनाए रखी जानी चाहिए। मृदा में नमी संरक्षण एवं जल उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए बुवाई अथवा रोपाई के समय हाइड्रोजेल का 5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग लाभकारी पाया गया है। हाइड्रोजेल मिट्टी में उपलब्ध जल को अवशोषित कर लंबे समय तक पौधों को उपलब्ध कराता है, जिससे सूखे एवं नमी तनाव की परिस्थितियों में फसल की वृद्धि, जल उत्पादकता तथा उपज में सुधार होता है। उपलब्ध सिंचाई जल का उपयोग केवल महत्वपूर्ण वृद्धि अवस्थाओं पर करना चाहिए तथा वैकल्पिक गीला एवं सूखा (AWD) सिंचाई पद्धति अपनाकर जल उपयोग दक्षता बढ़ाई जा सकती है। मिट्टी की जलधारण क्षमता एवं उर्वरता बनाए रखने के लिए गोबर की खाद, कम्पोस्ट तथा अन्य जैविक खादों का अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिए। साथ ही, फसल अवशेषों अथवा स्थानीय रूप से उपलब्ध खरपतवारों का मल्च

के रूप में उपयोग कर मिट्टी की नमी को लंबे समय तक संरक्षित रखा जा सकता है। नमी तनाव की स्थिति में फसल पर 2 प्रतिशत यूरिया तथा 1 प्रतिशत म्यूरेट ऑफ पोटाश (एमओपी) का पर्णीय छिड़काव लाभकारी सिद्ध होता है। यदि वर्षा में अत्यधिक विलम्ब हो जाए अथवा सूखे की स्थिति गंभीर हो, तो किसानों को धान के स्थान पर मक्का, मूंग अथवा बाजरा जैसी कम पानी की आवश्यकता वाली वैकल्पिक फसलों को अपनाने पर विचार करना चाहिए, जिससे उत्पादन जोखिम को कम किया जा सके।

गन्ना फसल के लिए प्रबंधनः

उत्तर प्रदेश देश का अग्रणी गन्ना उत्पादक राज्य है और यहाँ की कृषि अर्थव्यवस्था में गन्ना फसल का महत्वपूर्ण योगदान है। राज्य के लाखों किसान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से गन्ना उत्पादन एवं उससे जुड़े उद्योगों पर निर्भर हैं। गन्ना एक दीर्घावधि फसल है, जिसकी फसल अवधि लगभग 10 से 12 माह तक होती है। इसलिए एल–नीनो जैसी परिस्थितियों में वर्षा की कमी, उच्च तापमान तथा लंबे समय तक बनी रहने वाली नमी की कमी का प्रभाव इस फसल पर अपेक्षाकृत अधिक पड़ता है। जल की कमी के कारण पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है, कल्लों की संख्या घटती है, गन्ने की लंबाई और मोटाई कम हो जाती है तथा अंततः उत्पादन और चीनी प्रतिशत दोनों में कमी आ सकती है। ऐसी परिस्थितियों में किसानों को सूखा सहनशील एवं कम अवधि वाली उन्नत किस्मों जैसे CoPK 05191, Co0238, Co0239, CoPant 90223 तथा CoPant 97222 का चयन करना चाहिए। ये किस्में सीमित नमी की स्थिति में भी अपेक्षाकृत बेहतर वृद्धि एवं उत्पादन देने में सक्षम होती हैं। फसल में पोटाश का विशेष महत्व होता है, क्योंकि यह पौधों की जल उपयोग दक्षता बढ़ाने, जड़ों के विकास को प्रोत्साहित करने तथा सूखा एवं तापमान तनाव के प्रति सहनशीलता विकसित करने में सहायता करता है। इसलिए अनुशंसित मात्रा में म्यूरेट ऑफ पोटाश का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

गन्ने की फसल में निचली एवं सूखी पत्तियों को समय–समय पर हटाने (डिट्रैशिंग) से अनावश्यक वाष्पोत्सर्जन कम होता है तथा खेत में वायु संचार बेहतर बना रहता है। इससे कीट एवं रोगों की संभावना भी कम होती है। इसके अतिरिक्त, गन्ने की सूखी पत्तियों (ट्रैश) अथवा अन्य स्थानीय रूप से उपलब्ध फसल अवशेषों का उपयोग मल्च के रूप में करने से मिट्टी की सतह से जल वाष्पीकरण कम होता है, नमी लंबे समय तक बनी रहती है तथा खरपतवारों का प्रकोप भी नियंत्रित रहता है। मल्चिंग से मिट्टी का तापमान संतुलित रहता है और सूखे की स्थिति में पौधों को अतिरिक्त सुरक्षा प्राप्त होती है। जल की सीमित उपलब्धता की स्थिति में वैकल्पिक नाली सिंचाई (Alternate Furrow Irrigation) पद्धति अपनाना अत्यंत लाभकारी सिद्ध होता है। इस तकनीक में प्रत्येक नाली के बजाय एक छोड़कर दूसरी नाली में सिंचाई की जाती है, जिससे 25 से 45 प्रतिशत तक जल की बचत संभव होती है। साथ ही, फसल की आवश्यक नमी भी बनी रहती है। किसानों को उपलब्ध जल संसाधनों का उपयोग केवल महत्वपूर्ण वृद्धि अवस्थाओं, जैसे अंकुरण, कल्ले बनने, तीव्र वृद्धि तथा गन्ना बनने की अवस्थाओं पर करना चाहिए। इन अवस्थाओं में हल्की सिंचाई भी फसल को गंभीर नुकसान से बचा सकती है।

इसके अतिरिक्त, खेत में नमी संरक्षण के लिए निरंतर प्रयास करना आवश्यक है। जैविक खादों का प्रयोग, खेत की नियमित गुड़ाई, खरपतवार नियंत्रण तथा वर्षा जल संचयन जैसी तकनीकों को अपनाकर मिट्टी में नमी को लंबे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। यदि किसान इन वैज्ञानिक उपायों को समय पर अपनाते हैं, तो एल–नीनो जनित सूखे के प्रभाव को काफी हद तक कम किया जा सकता है। इससे न केवल जल उपयोग दक्षता में वृद्धि होगी, बल्कि गन्ने की उत्पादकता, गुणवत्ता और किसानों की आय को भी सुरक्षित रखा जा सकेगा।

बाजरा उत्पादन हेतु प्रबंधन उपायः

बाजरा एक महत्वपूर्ण मोटा अनाज (श्री अन्न) है, जो अपनी प्राकृतिक सूखा सहनशीलता और कम पानी की आवश्यकता के कारण जलवायु परिवर्तन एवं एल–नीनो जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों में किसानों के लिए एक विश्वसनीय फसल विकल्प माना जाता है। उत्तर प्रदेश के शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में बाजरा न केवल खाद्य एवं पोषण सुरक्षा प्रदान करता है, बल्कि सीमित संसाधनों वाले किसानों के लिए आर्थिक सुरक्षा का भी महत्वपूर्ण आधार है। एल–नीनो के कारण वर्षा में कमी तथा मिट्टी में नमी की कमी की स्थिति उत्पन्न होने पर किसानों को सूखा सहनशील एवं शीघ्र पकने वाली उन्नत किस्मों जैसे WCC–75, राज–171, पूसा–23, पूसा–322, ICMH–451, HHB–67, इम्प्रूव्ड, HHB–67, इम्प्रूव्ड–2 तथा ICTP–8203 (धनशक्ति) का चयन

करना चाहिए। ये किस्में सीमित नमी की परिस्थितियों में भी अपेक्षाकृत बेहतर वृद्धि एवं उत्पादन देने में सक्षम हैं। फसल की अच्छी वृद्धि एवं अधिक उत्पादन के लिए खेत में पौधों की उचित संख्या बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए समय–समय पर थिनिंग, खरपतवार नियंत्रण तथा गैप फिलिंग जैसे कार्य किए जाने चाहिए, जिससे पौधों के बीच प्रतिस्पर्धा कम हो और उपलब्ध नमी एवं पोषक तत्वों का बेहतर उपयोग हो सके। सूखे की स्थिति में उर्वरकों की टॉप ड्रेसिंग तब तक स्थगित रखनी चाहिए, जब तक मिट्टी में पर्याप्त नमी उपलब्ध न हो जाए। नमी की कमी में उर्वरकों का प्रयोग करने से उनकी उपयोग दक्षता कम हो जाती है और अपेक्षित लाभ प्राप्त नहीं होता।

यदि फसल की महत्वपूर्ण वृद्धि अवस्थाओं, जैसे फूल आने एवं दाना भरने के समय, पानी उपलब्ध हो तो जीवन रक्षक सिंचाई (Life and Saving Irrigation) अवश्य करनी चाहिए। इस प्रकार की सीमित सिंचाई भी फसल को गंभीर क्षति से बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नमी तनाव की स्थिति में 2 प्रतिशत यूरिया अथवा 1 प्रतिशत पोटेशियम क्लोराइड (KCl) का पर्णीय छिड़काव करने से पौधों की वृद्धि को बनाए रखने तथा सूखे के दुष्प्रभाव को कम करने में सहायता मिलती है। यह पौधों को आवश्यक पोषक तत्व शीघ्र उपलब्ध कराता है तथा उनकी शारीरिक क्रियाओं को सक्रिय बनाए रखता है। सूखे की परिस्थितियों में फसल की समय पर कटाई भी अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। बालियों को पूर्ण परिपक्वता प्राप्त होने पर शीघ्र कटाई कर लेनी चाहिए ताकि दानों के झड़ने अथवा अन्य कारणों से होने वाली हानि को कम किया जा सके। अनाज उत्पादन के लिए फसल की कटाई शारीरिक परिपक्वता (Physiological Maturity) अवस्था पर करनी चाहिए, जिससे दानों की गुणवत्ता एवं उपज दोनों बेहतर प्राप्त हों। वैज्ञानिक फसल प्रबंधन, नमी संरक्षण उपायों तथा उन्नत किस्मों के उपयोग द्वारा किसान एल–नीनो जैसी चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में भी बाजरा की सफल खेती कर सकते हैं तथा अपनी आय एवं खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित बना सकते हैं।

मक्का की खेती में सावधानियाँ:

मक्का उत्तर प्रदेश की एक महत्वपूर्ण खरीफ फसल है, जो खाद्यान्न, पशु चारा तथा औद्योगिक उपयोग की दृष्टि से विशेष महत्व रखती है। हाल के वर्षों में इसकी खेती का क्षेत्रफल और उत्पादन लगातार बढ़ रहा है, लेकिन एल–नीनो जैसी परिस्थितियों में कम वर्षा और लंबे समय तक नमी की कमी मक्का की वृद्धि एवं उत्पादन को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकती है। ऐसी परिस्थितियों में किसानों को शीघ्र पकने वाली एवं सूखा सहनशील उन्नत किस्मों तथा संकरों जैसे आजाद उत्तम, आजाद कमल, तरुण, नवीन, प्रगति, गौरव, PEHM–2, PEHM–5 तथा सूर्य प्रकाश का चयन करना चाहिए। ये किस्में सीमित जल उपलब्धता की स्थिति में भी अपेक्षाकृत बेहतर प्रदर्शन करने में सक्षम होती हैं। मृदा में नमी संरक्षण तथा जल निकास की उचित व्यवस्था के लिए मेड़ एवं नाली (Ridge and Furrow) पद्धति से बुवाई करना लाभकारी होता है। यह तकनीक वर्षा जल के बेहतर उपयोग में सहायक होने के साथ–साथ जलभराव और सूखे दोनों परिस्थितियों में फसल को सुरक्षा प्रदान करती है। खेत में पौधों की उचित संख्या बनाए रखने के लिए समय–समय पर थिनिंग एवं गैप फिलिंग का कार्य करना चाहिए, जिससे उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग हो सके और फसल की वृद्धि समान रूप से हो।

पोषक तत्व प्रबंधन के अंतर्गत बुवाई के समय फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी अनुशंसित मात्रा तथा नाइट्रोजन की एक–तिहाई से आधी मात्रा का प्रयोग करना चाहिए। शेष नाइट्रोजन को फसल की आवश्यकता के अनुसार घुटना अवस्था (Knee and high stage) तथा नर मंजरी निकलने (Tasselling stage) के समय विभाजित मात्रा में देना चाहिए। इस प्रकार उर्वरकों के संतुलित उपयोग से पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता बढ़ती है और पौधों की वृद्धि बेहतर होती है। इसके साथ ही खेत को खरपतवार मुक्त रखना भी अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि खरपतवार मिट्टी की नमी एवं पोषक तत्वों के लिए फसल से प्रतिस्पर्धा करते हैं। समय पर खरपतवार नियंत्रण करने से फसल को उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। एल–नीनो के दौरान यदि जल उपलब्ध हो तो फसल की महत्वपूर्ण वृद्धि अवस्थाओं, विशेषकर घुटना अवस्था, फूल आने तथा दाना भरने के समय जीवन रक्षक सिंचाई (Knee and high stage) अवश्य करनी चाहिए। सीमित मात्रा में दी गई सिंचाई भी उत्पादन हानि को काफी हद तक कम कर सकती है। नमी तनाव की स्थिति में 2 प्रतिशत यूरिया अथवा 1 प्रतिशत पोटेशियम क्लोराइड (KCl) का पर्णीय छिड़काव करने से पौधों की शारीरिक क्रियाएँ सक्रिय बनी रहती हैं और सूखे के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने में सहायता मिलती है।

अनाज उत्पादन के उद्देश्य से

मक्का की कटाई शारीरिक परिपक्वता (Physiological Maturity) अवस्था पर करनी चाहिए, जिससे अधिकतम उपज एवं बेहतर गुणवत्ता प्राप्त हो सके। हालांकि, यदि सूखे की स्थिति अत्यधिक गंभीर हो जाए और फसल से दाना उत्पादन की संभावना कम हो, तो किसानों को फसल को हरे चारे के रूप में काटने पर विचार करना चाहिए। इससे पशुओं के लिए गुणवत्तायुक्त चारा उपलब्ध होने के साथ–साथ किसानों को कुछ आर्थिक लाभ भी प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार उन्नत किस्मों, वैज्ञानिक फसल प्रबंधन, नमी संरक्षण तकनीकों एवं उचित पोषक तत्व प्रबंधन को अपनाकर किसान एल–नीनो जैसी चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में भी मक्का की सफल खेती कर सकते हैं तथा उत्पादन एवं आय को सुरक्षित रख सकते हैं।

जल संरक्षणः समय की सबसे बड़ी आवश्यकता

एल–नीनो जैसी परिस्थितियों में जल संरक्षण सबसे महत्वपूर्ण रणनीति है। किसानों को निम्न उपाय अपनाने चाहिए–

- खेतों में वर्षा जल संचयन।
- फार्म पॉन्ड का निर्माण।
- ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई का उपयोग।
- मल्चिंग एवं संरक्षण कृषि तकनीकों को अपनाना।
- जैविक पदार्थों का अधिक प्रयोग।
- जल उपयोग दक्षता बढ़ाने वाली तकनीकों का विस्तार।
- इन उपायों से सीमित जल संसाधनों का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है।

निष्कर्षः

जलवायु परिवर्तन और एल–नीनो जैसी घटनाएँ भविष्य में कृषि के लिए बड़ी चुनौती बन सकती हैं। लेकिन वैज्ञानिक कृषि तकनीकों, सूखा सहनशील किस्मों, जल संरक्षण उपायों तथा उचित फसल प्रबंधन के माध्यम से इन चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश के किसानों को चाहिए कि वे मौसम आधारित कृषि सलाहों का पालन करें, आधुनिक तकनीकों को अपनाएँ तथा उपलब्ध संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करें। यदि समय रहते उचित कदम उठाए जाएँ, तो एल–नीनो जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी फसल उत्पादन एवं किसानों की आय को सुरक्षित रखा जा सकता है।

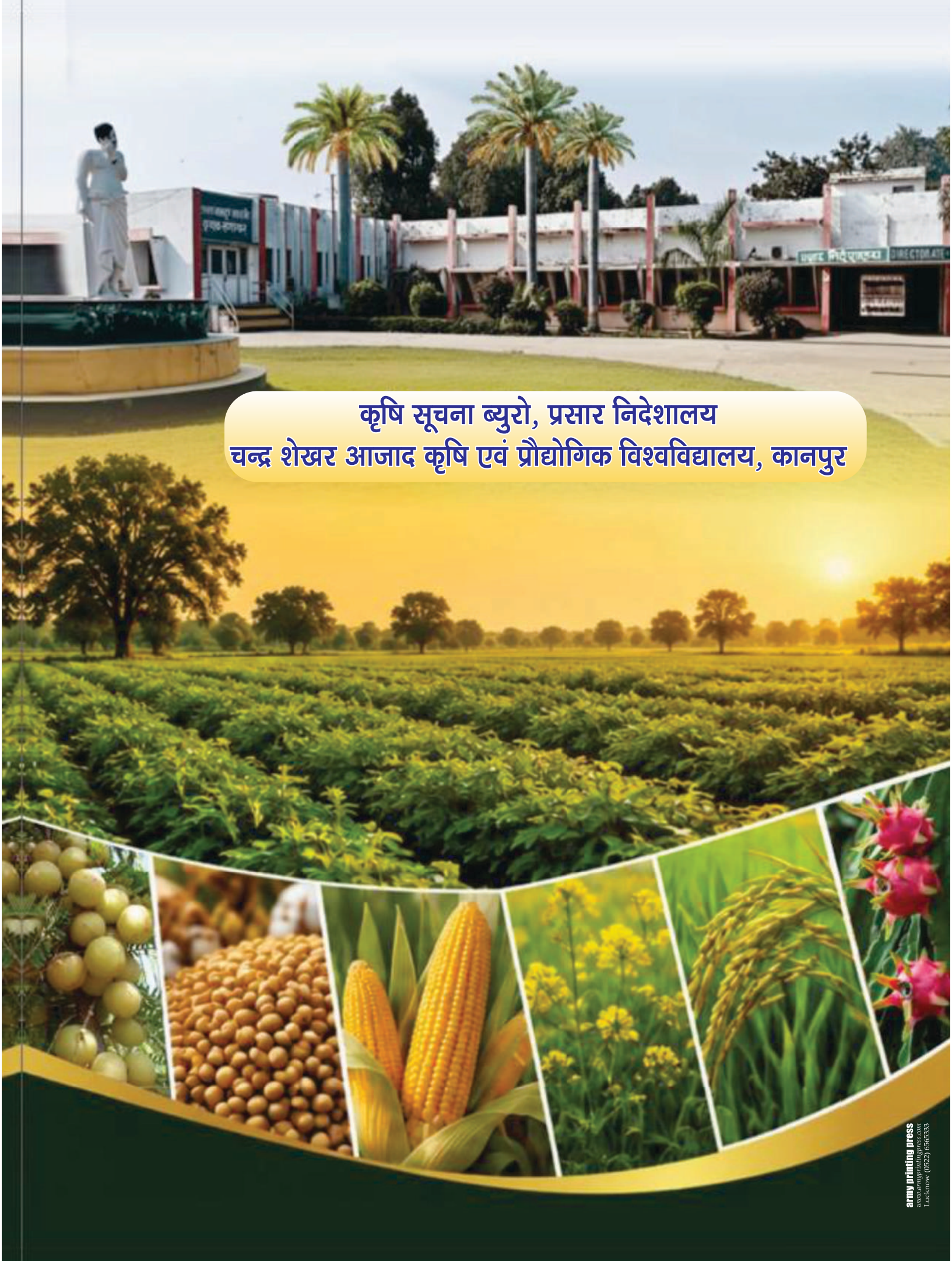

कृषि सूचना ब्युरो, प्रसार निदेशालय
चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर

army printing press
www.armyprintingpress.com
Lucknow (0522) 6565333